UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

M.A. Hindi - Second year

(2001 Admission onwards)

Paper IX - Optional paper

Special author - Premchand

Study Material
Prepared by

DR.PRAMOD KOVVAPRATH

W.M.O.Arts & Science College
Muttil P.O Wayanad - 673122
E-mail: pkovvaprath @ rediffmail.com

Copy right Reserved

CUP/1799/03 - 1

CUP 8413/11/500 - SDE - 1

विषय - सूची

भाग - I गोदान

1.	उपन्यास के तत्व	5
2.	प्रेमचन्दः जीवन तथा साहित्य - एक परिचय	7
3.	हिन्दी उपन्यास - प्रेमचन्द के पहले	11
4.	प्रेमचन्द के उपन्यास - कथावस्तु	14
5.	प्रेमचन्द के उपन्यास - एक आलोचनात्मक परिचय	22
6.	'गोदान' का कथानक	25
7.	'गोदान' में कृषक जीवन की समस्याएँ	29
8.	होरी का चरित्र चित्रण	31
9.	गोबर का चरित्र - चित्रण	33
10.	धनिया का चरित्र चित्रण	34
11.	मेहता का चरित्र चित्रण	36
12.	रायसाहब अमरपालसिंह - चरित्र चित्रण	37
13.	मिसं मालती का चरित्र चित्रण	38
14.	'गादान' शीर्षक की सार्थकता	40
15.	'गोदान' में शीर्षण के विविध रूप	42
16.	'गादान' में आदर्शवाद और यथार्थवाद	45
17.	प्रेमचन्द की भाषा शैली	47
18.	सप्रसंग व्याख्या	49

भाग II - कफ़न तथा अन्य कहानियाँ

1.	कफ़न	52
2.	लेखक	53
3.	जुरमाना	55
4.	रहस्य	56
5.	मेरी पहली रचना	58
6.	कश्मीरी सेब	59
7.	जीवन सार	59
8.	दो बहनें	62
9.	आहुति	63
10.	होली का उपहार	64
11.	पंडित मोटेराम की डायरी	66
12.	प्रेम की होली	68
13.	यह भी नशा, वह भी नशा	70
14.	कहानी के तत्व	71
15.	सप्रसंग व्याख्या	73

भाग 3 - कुछ विचार

1.	साहित्य का उद्देश्य	76
2.	कहानी कला पर प्रेमचन्द के विचार	78
3.	प्रेमचन्द की उपन्यास संबंधी परिकल्पना	81
4.	एक भाषण - सारांश	84
5.	जीवन में साहित्य का स्थान	86
6.	उर्दू, हिन्दी और हन्दुस्तानी	88
7.	राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी समस्यायें	90
8.	कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार	92
9.	सप्रसंग व्याख्या	95
	प्रश्नपत्र का नमूना	104

भाग - I

गोदान

उपन्यास के तत्व

उपन्यास को सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा माना जाता है। जीवन की व्याख्या जिस सुगमता और सहजता से उपन्यास में संभव है वह साहित्य की किसी अन्य विधा में नही होती। उसकी लोकप्रियता के पीछे सुनने और सुनाने की, मनुष्य की सहज अभिलाषा है। नाटक की तरह उसकी शास्त्रीय मर्यादा नहीं है। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कहै है।

प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक राल्फ फोक्स उपन्यास पर अपना मत यों व्यक्त करते हैं -

"The Novel is the epic art of our modern bourgeois society"

अर्थात् उपन्यास हमारे आधुनिक बुर्जुआ समाज का महाकाव्य है। प्रेमचन्द उपन्यास को मानवचरित्र का चित्र मात्र समझते हैं। उनका कहना है कि मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है।

शुक्लजी के अनुसार वर्तमान जगत में उपन्यासों की बडी शक्ति है। अतः जीवन का संपूर्ण ज्ञान उपन्यास से होता है।

अंग्रेज़ी शब्द 'Novel' का अर्थ नवीन है। हिन्दी में 'Novel' केलिए उपन्यास कहते हैं। आजकल जिस अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त होता है उस अर्थ में यह आधुनिक हैं। संस्कृत लक्षण ग्रंथों में 'उपन्यास' शब्द है लेकिन इस नाटक साहित्य के 'उपन्यास' शब्द में और आजकल के 'उपन्यास' शब्द में मात्र नाम की समानता है। 'उपन्यास' का शब्दार्थ 'सामने रखना' है।

उपन्यास के प्रमुख रूप से छः तत्व हैं -

1. कथावस्तु
2. पात्र और चरित्र चित्रण
3. कथोपकथन
4. वातावरण
5. उद्देश्य
6. शैली

भिन्न - भिन्न उपन्यासकार अपनी रुचि और आवश्यकताओं के अनुकूल भिन्न - भिन्न तत्वों पर अधिक बल देते हैं। वास्तव में यह तत्व एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। आजकल के उपन्यासकार कथावस्तु की अपेक्षा चरित्र चित्रण पर अधिक ध्यान देते हैं। उपन्यास के तत्वों के संबंध में हमारी जो धारणा है वह अधिकांश रूप में अंग्रेज़ी का अनुकरण मात्र है। लेकिन आदर्शों के भेद और रुचि - वैचित्र्य के अनुसार इन तावों के विवेचन में थोड़ा बहुत अंतर हो सकता है।

1. कथावस्तुः-

उपन्यास के तत्वों में कथावस्तु या कथानक सबसे प्रथम और प्रधान है। यह उपन्यास की बुनियाद है। उपन्यास का समग्र स्वरूप कथावस्तु के ढाँचे पर ही विकसित होता है। कथावस्तु की दृष्टि से उपन्यास के दो भेद हैं - भावप्रधान और घटनाप्रधान। भावप्रधान उपन्यासों में घटनाओं का वर्णन उतना ही होता है, इनके वर्णन से उद्देश्य या चरित्र स्पष्ट हो। घटनाप्रधान उपन्यासों में कातूहल पूर्ण घटनाओं की भरमार होती है। जासूसी और तिलस्मी उपन्यासों नें घटनाओं का वर्णन इस ढंग से होता है। वर्णन की दृष्टि से उपन्यास की कथावस्तु को तीन भागों में बाँटा जा सकता है - प्रारंभ या प्रस्तावना भाग, मध्य या विकास भाग और परिणाम या समाप्ति भाग। प्रारंभ और समाप्ति भागों में कलात्मक विन्यास की आवश्यकता है। मध्यभाग में पात्रों के आंतरिक और बाह्य संघर्षों का विशद विविरण रहता है। उत्कृष्ट कथावस्तु केलिए कथावस्तु की मौलिकता, विषय की नवीनता, नवीन घटनाओं की कल्पना और इन्हे कलापूर्ण संयोजन अनिवार्य है।

2. पात्र और चरित्र चित्रणः-

यह उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। उपन्यास के पात्र वास्तविक जीवन के जितने निकट होते हैं उतने सजीव और सफल बनते हैं। अस्वाभाविक पात्रों से उपन्यास में अरोचकता आती है। आवश्यकता से अधिक पात्रों का होना उपन्यास की सफलता में बाधक होता है। पात्रों का चरित्र चित्रण स्वाभावनिक होना चाहिए। चरित्र का व्यक्तित्व, उसके बौद्धिक गुण तथा उसके चरित्रिक गुण चरित्र चित्रण के महत्वपूर्ण अंग है।

चरित्र चित्रण में पात्रों का क्रमिक विकास दिखाया जाना चाहिए। प्रमुखतः दो प्रकार के चरित्र होतें हैं। इसमें एक सामान्य या वर्गीगत पात्र है और दूसरा व्यक्तिगत पात्र। जोपात्र अपनी जाति के प्रतिनिधि या अपने वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं वे टाइप या सामान्य वर्गीगत पात्र कहे जाएँगे। जो अपनी निजी विशेषताएँ लिये समाज में आते हैं वे व्यक्तिगत पात्र हैं, आदर्श पात्र वे हैं, जो वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपनी निजी विशेषताओं से पहचान लिये जाते हैं।

3. कथोपकथनः-

यह उपन्यास का एक और प्रमुख तत्व है। जिसका संबंध पात्र तथा कथावस्तु दोनों से हैं। वार्तालाप पात्रों के व्यक्तित्व का प्रकाशन तथा कथा केलिए होता है। उसके द्वारा उपन्यास में नाटकीयता आती है। पात्रों के वार्तालाप में स्वाभाविकता का होना बहुत अधिक आवश्यक है, क्योंकि अगर कोई उपन्यास आँचलिक उपन्यास है तो उसके पात्रों के संवाद की भाषा भी आँचलिक होनी चाहिए। नहीं तो इससे अस्वाभाविकता मालूम होगा। कथोपकथन में स्वाभाविकता के साथ - साथ सार्थकता और सजीवता भी होनी चाहिए, ताकि उपन्यास में रोचकता आ जाती है।

4. वातावरणः-

उपन्यास में देशकाल और वातावरण का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है। क्योंकि उपन्यास मानव जीवन का ही चित्रण है, मनुष्य परिस्थिति की उपज है। निश्चय है कि मनुष्य का संबंध अपने युग, समाज, देश और परिस्थितियों होता है। मनुष्य की बातें सभी एक होने पर भी आचार - विचार, रहन - सहन, खान - पान आदि में देश - देश के जाति - जाति के लोगों में भिन्नता है। सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थक परिस्थिति भिन्न है। अगर उपन्यास में इसका खयाल नहीं रखा जाता है तो वह अरोचक और अस्वाभाविक बनता है।

पात्रों के चित्रण को पूर्णता देने केलिए देश काल वातावरण का निर्माण अति आवश्यक है। अर्थात् उपन्यासकार को उपन्यास रचना के समय घटना का स्थान, समय तथा तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान होना बहुत अनिवार्य है। इससे ही उपन्यास में स्वाभाविकता आ जाएगी।

5. उद्देश्यः-

प्रत्येक प्रयत्न किसी उद्देश्य से किया जाता है। उपन्यास की रचना भी एक विशिष्ट उद्देश्य से होती है। उपन्यासकार अपने विचारों को पाठकों के सामने रखता है। उसका प्रयोजन व्यक्ति का मनोरंजन हो सकता है तथा समाज का सुधार भी। उपन्यासकार को चाहिए कि वह अपने सिद्धांत का प्रतिपादन अप्रत्यक्ष रूप से पात्रों के वार्तालाप और घटनाओं के माध्यम से करे। यह भी रसनीय और संवेदनीय रूप में होना चाहिए। आदर्शवादी हो या यथार्थवादी उपन्यासकार अपनी दृष्टि रोचक ढंग से पाठकों के सामने रखते हैं।

6. शैलीः-

उपर्युक्त सभी तत्वों की सफलता शैली पर निर्भर है। शैली का संबंध भाषा से ही नहीं, रचना के तकनीक से भी है, जिससे उपन्यास अच्छा या बुरा लगे। बफन के अनुसार, "style is the man himself" अर्थात् हर व्यक्ति की शैली अलग - अलग है।

उपन्यास को अपनी भावाभिव्यक्ति केलिए अत्यंत सरल और सरस भाषा - शैली को अपनाना चाहिए। उपन्यास की रचना शैली यथासंभव एक जैसी रखनी चाहिए। उपन्यास लेखन की कई शैलियाँ प्रचलित हैं। उदाः- कथा शैली, आत्मकथा शैली, पत्र शैली, डायरी शैली आदि।

हर साहित्यिक विधा में समय के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है। अर्थात, प्राचीन उपन्यास और आज के उपन्यासों में काफी अंतर हैं। इसलिए एक गतिशील साहित्यिक शाखा के नियमों में परिवर्तन ज़रूर आ सकते हैं। इसलिए आधुनिक उपन्यासों में उपर्युक्त तत्वों के परिवर्तित रूप भी मिल सकते हैं।

2 - प्रेमचन्दः जीवन तथा साहित्य - एक परिचय

1880 - वाराणासी के पास लमही गाँव में 31 जुलाई के जन्म। नाम धनपतराय। चाचा उन्हें नवाब राय कहकर पुकारते थे। पिता आजायब लाल पोस्ट मास्टर थे और माँ का नाम आनन्दी देवी था। दादा गुरुसहाय लाल पटवारी थे और नाना एक तालुकेदार के कारिन्दा थे और लिखने - पढने के काम में रुचि लेते थे।

1885 - गाँव के मौलवी साहब के मदरसे में दखिला। 'चोरी' नामक अपनी कहानी में उन्होंने गाँव के स्कूल के जीवन की झाँकी दी है।

1888 - संग्रहणी से माँ की मृत्यु। पिता का दूसरा विवाह। सौतेली माँ का कठोर व्यवहार।

1892 - पिता का गोरखपुर को तबादला। धनपतराय का मिशन स्कूल में दाखिला।

1895 - लमही वापस आए और क्वीन्स कॉलेज, वारणासी में नवें दर्जे में नाम लिखाया। पिता 5 रु. प्रतिमाह खर्च भेजते थे। उत्तर प्रदेश के मेंहदावल की एक लडकी से धनपतराय का विवाह जो धनपतराय की सौतेली माँ के पिता ने तय कराया था।

1897 - एक छोटी सी बीमारी के बाद अजायब लाल की मृत्यु। वे अपने पीछे पत्नी और दो पुत्र छोड गये। धनपतराय ने पढ़ाई के साथ परिवार के भरण - पोषण केलिए ट्यूशन करना शुरु किया।

1898 - धनपतराय ने द्वितीय श्रेणी में मेट्रिक परीक्षा पास की कॉलेज में फीस माल करने के साथ नाम लिखाना चाहा पर असफल रहे। फिर हिन्दू कॉलेज में, जो नया खुला था, दाखिले की कोशिश की। परीक्षा में बैठे पर गणित में कमज़ोर पाये गये।

वारणासी में एक वकील के लडके को पढ़ाने लगे और शरह में रहने लगे ताकि अपना गणित ज्ञान ठीक कर कॉलेज में फिर से दाखिले केलिए कोशिश कर सकें।

1899 - एक दिन भूख से पीड़ित होकर वे गणित की एक किताब को दूकान पर बेचने गये जहाँ प्राइपरी स्कूल के एक प्रधानध्यापक से उनकी मुलाका हुई जिसने 18 रु माहवार पर अपने स्कूल में नौकरी देने की बात की। उन्होंने इसे स्वीकार किया और चुनारगढ़ के मिशन स्कूल में नौकरी शुरु कर दी।

1900 - 2 जुलाई, 1900 को बहराइच के जिला स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। 21 सितंबर को जलाबाई के स्कूल प्रतापगढ़ को स्थानांतरित।

1902 - 6 जुलाई को इलाहाबाद के अध्यापकों के गवर्नमेण्ट ट्रेनिंग कॉलेज में भर्ती हुए। दो वर्ष का पाठ्यक्रम था।

1903 -कॉलेज में पढ़ते समय नवाबराय नाम से लिखना शुरु किया। यह नाम चाचा ने दिया था। 8 अक्तूबर - वाराणसी से प्रकाशित उर्दू सप्ताहिक "आवाज़ - ए - खल्क" में "असरार - ए - माविद" का धारावहिक प्रकाशन। इसमें लेखक का नाम धनपतराय उर्फ "नवाबराय "अलाहाबादी दिया गया है।

1904 - अप्रैल में स्थायी जूनियर इंग्लिश टीचर परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। पहली मई को गवनेमेण्ट स्कूल प्रतापगढ़ में सहायक अध्यापक नियुक्त।

1905 - 'ज़माना' में एक पुराना लेख छपा। फरवरी को सेण्ट्रल ट्रेनिंग कॉलेज इलाहाबाद के मॉडल स्कूल के 3 माह केलिए प्रथम अध्यापक नियुक्त । जिला स्कूल कानपुर में अध्यापक नियुक्त।

1906 - पत्नी द्वारा आत्महत्या की चेष्टा। बच गयी। दूसरे दिन मायके जाने की जिद की और भेज दी गयी। 'हमखुर्मा - ओ - हमसवाब' का प्रकाशन।

नवाबराय 'ज़माना' संपादक मंडल में नियुक्त।

1907 - 'प्रेमा' का प्रकाशन। यह 'हमुखुर्मा - ओ - हम सवाब' का हिन्दी संस्करण था। लेखक का नाम बाबू नवाब राय बनारसी दिया गया है।

पहली छोटी कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' प्रकाशित।

1908 - 'सोजे वतन' का ज़माना प्रेस से प्रकाशन। 5 छोटी कहानियों का संकलन था।

1909 - बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह। विधवा विवाह का संबंधियों और कुछ मित्रों ने प्रबल विरोध किया। धनपतराय ने यह दलील दी कि उनकी पहली पत्नी मर चुकी है। वे विधुर है, इसलिए एक विधवा से विवाह कर रहे हैं। 20 जून को हमीरपुर जिले में महोबा के सब डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स नियुक्त।

1919 - गुप्तचर पुलिस द्वारा 'सोजे वतन' के लेखक नवाब राय का पता लगा लिया गया। जिला कलक्टर ने उन्हें बुलाया और पूछा कि क्या वे कहानियाँ आपने लिखी हैं। उन्हें बताया गया कि इनसे राजद्रोह टपकता है। लेखक को चेतावनी दी गयी कि आगे से बिना अनुमति के कुछ न लिखें और इस पुस्तक की सभी कापियाँ नष्ट करने केलिए अधिकारियों के पास जमा कर दें। ज़माना प्रेस से 500 प्रतियाँ जमा की गयीं पर 200 प्रतियाँ बच गयीं।

धनपतराय को नवाब राय के नाम से लिखना छोड़ देना पड़ा। 'ज़माना' के संपादक दयानारायण निगम ने 'प्रेमचन्द' नाम अपनाने को कहा जिसे उन्होंने मान लिया। इस तरह 'नवाब राय' की जगह 'प्रेमचन्द' ने जन्म ले लिया।

ज़ायाना के दिसंबर, 1910 के अंक में छपी कहानी 'बड़े घर की बेटी' में पहली बार लेखक का नाम प्रेमचन्द दिया गया जो आगे चलकर प्रसिद्ध हुआ।

1911 - प्रेमचन्द को शिवरानी से एक पुत्री का जन्म। इसका नाम कमला रखा गया। 'ज़माना' और 'अदीब' पत्रिका में कई कहानियाँ छपीं।

1912 - नवाब राय नाम से 'जल्वा - ए - ईसार' नामक उपन्यास का प्रकाशन।

1913 - कई कहानियों का उर्दू में प्रकाशन।

1914 - बस्ती में स्कूलों के सब डिप्टी इंस्पेक्टर पद का कार्यभार ग्रहण किया। दौरा करना पडता था। प्रेमचन्द का स्वास्थ्य हमीरपुर में अच्छा नहीं रहता था। उन्हें पेचिस की बीमारी लग गयी और हालत बिगडती गयी। हिन्दी तथा उर्दू में कहानियाँ प्रकाशित। दौरे में असमर्थता के कारण तब डिप्टी इंस्पेक्टर पद छोड़ा और गवर्नमेण्ट स्कूल बस्ती में सहायक अध्यापक नियुक्त हो गये।

1916 - इलाहाबाद विश्वविद्यालय से इतिहास अंग्रेज़ी, फारसी और तर्कशास्त्र में इन्टरमीडिएट परीक्ष पास की। अगस्त को गोरखपुर सरकारी स्कूल में सहायक प्राध्यापक। पुत्र रत्न की प्राप्ति। नाम श्रीपत राय रखा। हिन्दी पत्रिकाओं में विशेषतः सरस्वती में लिखना शुरु किया। दो भाई, पंच परमेश्वर, जगनू की चमक, धोखा, सौत, नमक का दरोगा आदि कई कहानियों की रचना।

1917 - 'सप्त सरोज' कहानी संग्रह का प्रकाशन।

1918 - 'नवनिधि' कहानी संग्रह का प्रकाशन।

'सेवा सदन' उपन्यास का प्रकाशन। यह अप्रकाशित रचना 'बाजार - ए - हुस्न' का हिन्दी रूपांतर था।

दूसरे उपन्यास की रचना का आरंभ। प्रारंभिक नाम 'नाकाम' रखा गया और बाद में यह हिन्दी में 'प्रमाश्रम' और उर्दू में 'गोश - ए - आफियत' के नाम से छपा।

1919 - इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी. ए. पास किया। दूसरे पुत्र का जन्म। उसका नाम मन्नू रखा गया।

1920 - 5 जुलाई को चेचक से मन्नु की मृत्यु।

1921 - 8 फरवरी को गाजी मियां के मैदान में महात्मा गाँधी का भाषण सुना और सरकारी नौकरी छोडने का संकल्प। 16 जनवरी को स्कूल से संबंध विच्छेद। गोरखपुर में चरखा

प्रचार का काम हाथ में ले लिया। 'प्रेमाश्रम' की पांडुलिपि को अंतिम रूप से तैयार किया और 'संग्राम' नाटक की योजना हाथ में ली। लमही वापस आये, पर गॉव का जीवन रुचा नहीं। जुलाई में मारवाड़ी विद्यलय कानपूर में प्रधानाध्यापक के पद पर काम करने लगे।

1922 - प्रेमाश्रम, गौशा - ए - आफियात, उर्दु उपन्यास, का हिन्दी रूपांतर प्रकाशित। मारवाड़ी विद्यालय से त्यागपत्र और लमही वापस। कई कहानियों का प्रकाशन। काशी विद्यापीठ में हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। पर ज़्यादा दिन नहीं रहे और त्यागपत्र दे दिया।

1923 - 'संग्रम' नाटक का प्रकाशन करबला, मुक्तिमार्ग वज्रपात, क्षमा, सत्याग्रह, आभूषण, विधवा, परीक्षा आदि कई कहानियों की रचना।

1924 - 'रंगभूमि' उपन्यात्त का प्रकाशन। 'कर्बला' नाटक प्रकाशित।

1925 - 'चाँद' पात्रिका में 'निर्मला' उपन्यास का क्रमशः प्रकाशन।

1926 - कई कहानियाँ प्रकाशित। 'कायाकल्प' उपन्यास प्रकाशित।

1927 - सती, सुजान भगत, माँगे की घड़ी, 'आत्म संगीत' आदि कहानियों का प्रकाशन। 'माधुरी' में सहायक संपादक नियुक्त।

1928 - मंत्र, मोटेराम शास्त्री, दो सखियाँ, उन्माद, संपादक, विद्रोही, अग्नि समाधि, प्रायश्चित आदि कई कहानियों की रचना।

1929 - पांच फूल, प्रतिज्ञा, अग्नि समाधि, सप्त सुमन, प्रेम चालीसा आदि कई कहानी संग्रह प्रकाशित।

1930 - मार्च में सरस्वती प्रेस से हंस का प्रकाशन। जून - 1000 रु.की जमानत मांगी गयी। नवंबर - श्रीमती प्रेमचन्द गिरफ्तार।

1931 - जनवरी - शिवरानी देवी की जेल से रिहाई। स्वामिनी, लांछन, होली का उपहार, प्रेरणा कहानियों की रचना।

1932 - वारणासी वापस आए और बेनिया बाग में किराये के मकान में रहने लगे। सरस्वती प्रेस में काम कम था, इसलिए प्रेमचन्द ने 'हंस' चालू किया था। उन्होंने एक पात्रिका निकालने का भी निरचय किया, फिर विनोद शंकर व्यास द्वारा अगस्त से प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक जागरण का काम हाथ में लिया। दुर्भाग्य से 'हंस' और 'जागरण' दोनों से सरस्वती प्रेस भारी घाटे में चलने लगा।

उस समय के काले कानून के अनुसार सरस्वती प्रेस से 2000 रु की जमानत माँगी गयी। 26 अक्तूबर 1932 के 'जागरण' के अंक में प्रकाशित 'उसका अंत' शीर्षक कहानी केलिए यह जमानत माँगी गयी थी।

1933 - कायर, दिल की रानी, गुल्ली - डंडा, बालक, कैदी, नया विवाह कहानियों का प्रकाशन।

1934 - 'प्रेम की वेदी' लघुनाटक का प्रकाशन। राष्ट्रभाषा सम्मेलन, बंबई की स्वागत समिति के अध्यक्ष बनाये गये। 'भाषा ही राष्ट्र की बुनियाद है' विषय पर भाषण दिया। नशा, जादू, मनोवृत्ति, रियासत का दीवान, मुक्त का यश, दूध का दाम, बडे भाई साहब, ईदगाह, बेटोंवाली विधवा, ज्योति कहानियों का प्रकाशन। गोदान की रचना समाप्ति पर।

1935 - सरस्वती प्रेस में गड़बड़ी। अस्थायी रूप से बंद। प्रेमचन्द वारणासी वापस । 'जागरण' बंद। मानसरोवर (खंड - 1) कहानियों का संग्रह प्रकाशित। 'हंस' को भारतीय साहित्य परिषद ने अपने हाथ में ले लिया। गाँधीजी ने इसे आशीर्वाद दिया और यह परिषद का मुख पत्र बन गया। अक्तूबर में प्रेमचन्द और कन्हैया लाल मणिकलाल मुंशी ने मिल कर 'हंस' का संपादन किया। कर्मभूमि का उर्दू रूपांतर 'मैदान - ए - अमल' प्रकाशित। 'कर्मभूमि' का गुजराती संस्करण प्रकाशित।

1936 - रहस्य, कश्मीरी सेब, जुर्माना कहानियों का प्रकाशन लखनऊ में प्रगातिशील लेखक सम्मेलन में भाषण दिया। सेठ गोविन्द पास के नाटक 'स्वातंत्र्य सिद्धात' के प्रकाशन केलिए हंस से जमानत मांगी गई। भारतीय साहित्य परिषद ने 'हंस' का प्रकाशन बंद करने का निर्णय किया। गोदान का प्रकाशन; यह सरस्वती प्रेस से छपा। अतिसार से प्रेमचन्द की हालत बिगड गयी। इलाज केलिए लखनऊ गये। कोई लाभ नहीं हुआ। बनारस वापस आये।

जमानत जमा न करने के परिषद् के निर्णय से वे बहुत दुखी हुए। परिषद् इसे बंद कर एक दूसरा पत्र निकलना चाहती थी। परिषद् ने 'हंस' के प्रकाशन बंद करने की सूचना में अपना पता यह दिया था - द्वारा सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली। प्रेमचन्द को यह बुरा लगा। उनका कहना था कि परिषद् ने 'हंस' केलिए किये गये उनके श्रम का मूल्य नहीं समझा और 'हंस' का बाकी हिसाब भी चुकता नहीं किया। हंस की जमानत जमा कर दी गयी। सितंबर अंक जैनेन्द्र कुमार की सहायता से प्रकाशित प्रेमचन्द ने इन्हें दिल्ली से बुलाया था। इसमें प्रेमचन्द का अंतिम लेख 'महाजनी सभ्यता' प्रकाशित है।

7 अकतूबर की रात को उनकी हालत खराब हो गयी। वे संज्ञा शून्य हो गये और 8 अक्तूबर को इस संसार से विदा हो गये।

3 - हिन्दी उपन्यास - प्रेमचन्द के पहले

आधुनिक काल की एक सशक्त साहित्यिक विधा है उपन्यास। हिन्दी उपन्यास को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं - पूर्व प्रेमचन्द युग, प्रेमचन्दयुग और प्रेमचन्दोन्तर युग। लगभग 1872 से लेकर 1918 तक के समय के उपन्यासों को पूर्वप्रेमचन्द युगीन उपन्यास कह सकते हैं। इसके प्रणेता और प्रवृत्तियाँ मुख्यतः निम्नलिखित हैं।

हिन्दी उपन्यास की चर्चा लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' नामक उपन्यास से प्रारंभ होती है। यह एक मौलिक उपन्यास है। यों इससे पहले बंगला आदि भाषाओं से उपन्यासों का अनुवाद हो चुका था किंतु मौलिक उपन्यास के नाम पर केवल - एक कृति का उल्लेख किया जा सकता है। वह है पं.श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती'। इसमें उपन्यास के कुछ तत्व अवश्य मिल जाते हैं किंतु वस्तुतः यह उपन्यास के धरातल पर नहीं पहूंच पाता। उसमें निबंध और मध्ययुगीन वार्ता का समन्वित रूप प्रस्फुटित हुआ है।

इस युग के उपन्यासकारों में मुख्यतः श्रीनिवास दास ठाकुर जगमोहन सिंह, बालकृष्ण भट्ट, किशोरीलाल गोस्वामी गोपालराम गहमरी, देवकीनन्दन खत्री, लज्जाराम मेहता, अयोध्यासिंह उपाध्याय,ब्रजनन्दन सहाय, माधवी माधव आदि प्रमुख है।

हिन्दी उपन्यास भी भारतेन्दु युग की देन है। भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में उपन्यास के अभाव की ओर संकेत करते हुए उपन्यास लिखने की प्रेरणा युगीन साहित्यकारों को दी है। उक्त अधूरी रचना में मध्यवर्ग के सामाजिक समस्याओं का संकेत है।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतीय जन - जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण काल रहा है। इस समय सामाजिक रूढियों, परंपराओं, रीति - रिवाड़ों तथा धर्म के नाम पर समाज में अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थीं। उस समय समाज में दो प्रकार के विचारधारावाले लोग थे, एक जो भारतीय प्राचीन वर्ण - व्यवस्था, जाति - व्यवस्था तथा सामाजिक बंधनों को आवश्यक मानता था और दूसरा जो तन से भारतीय और मन से अंग्रेज़ था। इनके बीच तीसरा एक सुधारवादी विचारधारा के लोग भी शामिल हुए। इनमें राजराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गोविन्द रानडे तथा महात्मा गांधी प्रमुख थे। इनकी सामाजिक संस्थाओं में ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, थियोसफिकल सोसाईटी तथा रामकृष्णमिशन आदि उल्लेखनीय है। इन संस्थाओं ने इस युग के उपन्यासकारों को अत्यंत गहराई से प्रभावित किया है और यह उनकी रचना में भी स्पष्ट - दृष्टित है।

प्रेमचन्द के पूर्व का हिन्दी उपन्यास प्रमुख रूप से अद्‌भुत, अलौकिक घटना व्यापारों में विस्मय विमुग्ध सा उलझा रहा है। उसने हमें मनमाने ढंग स तिलस्मों की सैर कराई, ऐयारी आश्चर्यजनक करिश्में दिखाये और जासूसी के कारनामों से चमत्कृत करता रहा। उनका मुख्य लक्ष्य मनोरंजन करना है। वे अपने देश के और भाषा के पूर्वज थे। यह सब होते हुए भी उसमें जगत और जीवन के परिचय की तीव्र आकाक्षा थी और उसने तत्कालीन समाज की गतिविधि का अनुसरण का प्रयास भी किया।

श्रीनिवासदास का 'परीक्षागुरु' मध्यवर्गीय चित्रण की दृष्टि से क्रांतिकारी उपन्यास है। इस समाज की खुशामदी प्रवृत्ति, झूठी सम्मान भावना, प्रदर्शन प्रियता, अकर्मण्यता, नारी की उपेक्षा, विदेशीपन की नकल आदि सामाजिक समस्याओं के साथ ही राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याओं का भी चित्रण सशक्त और प्रभावशाली भाषा में उन्होंने किया। भामाजिक उपन्यासकार के रूप में उन्होंने कमाल दिखाया है। 'परीक्षा गुरु' में एक ओर मध्यवर्ग की स्वार्थी, खोखली, परंपरागत मान्यताओं का चित्रण है तो दूसरी ओर मध्यवर्ग की जागरूकता, आदर्शवादिता और नैतिकता का सी अंकन हुआ है।

पं. बालकृष्ण भट्ट दूसरा महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यासकार है। इनके प्मुख उपन्यास 'सौ आजान एक सुजान' में प्रदर्शन प्रियता, खुशामदी प्रवृत्ति आदि का वर्णन मिलता है। इसमें मध्यवर्ग के लोगों की दुर्बलताओं का चित्रण मितता है। यह एक शिक्षापद उपन्यास है। उनका 'नूतन ब्रह्मचारी' आदर्शपरक सुधारवादी उपन्यास है। जिसमें नायक बिनायक के चरित्र बल से डाकुओं की प्रवृत्ति के सुधर जाने की कथा वर्णित है।

अन्य सामाजिक उपन्यासकार हैं राधाकृष्ण दास, लज्जाराम मेहना और अयोध्यासिंह उपाध्याय। राधाकृष्णके 'निसहाय हिन्दू' उपन्यास गोवध समस्या को लेकर है। भारतेन्दु के 'भारत दूर्दशा' और 'भारत जननी' के मूल स्वर को प्रतिफलित करने का साहस राधाकृष्ण दास ने किया है। हरिऔध के 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' बडे आदर्शवादी दृष्टिकोण को लेकर है। इसमें मध्यवर्ग की प्रेम - समस्या तथा स्त्री - समस्या प्रमुख है। उपन्यास का कलेवर

अत्यंत संक्षिप्त है। इसमें स्त्री - समस्या के साथ ही सामाजिक -कुरीतियों पर भी विशद रूप से चित्रण किया है। लज्जाराम मेहता का 'स्वतंत्र रमा परंतत्र लक्ष्मी', 'आदर्श दम्पति', 'बिगडे का सुधार' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। इसमें मध्यवर्ग के स्त्री - समस्या के साथ ही भारत - पाश्चिमी सभ्यता का संघर्ष शिक्षा तथा बेकारी की समस्याओं का भा अंकन हुआ है।

मनोरंजनप्रधान उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनन्दन खत्री आदि प्रमुख हैं। इसमें तिलस्मी - ऐयारी उपन्यास, जासूसी - डकैती उपन्यास आदि आते हैं। गोस्वामी ने कई उपन्यास लिखे हैं। इनमें कुछ मध्यवर्गीय समस्याओं की ओर संकेत करते हैं। उनके उपन्यासों में 'प्रणयिनी परिणय', 'तरुण तपस्विनि', 'अंगूठी का नगीना' तथा लीलावती आदि प्रमुख हैं। शुक्लजी के मत से 'साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए'। उनके उपन्यास समसामयिक समस्याओं से भी ओत - प्रोत है। वह प्राचीन परंपरावादी है। नारी समस्याओं के अतिरिक्त मध्यवर्ग की आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का भी चित्रण उनके उपन्यास में है। उन्होंने वैदिक तथा परंपरागत आदर्श पर बल दिया। पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण मात्र करनेवालों की निन्दा की।

ऐयारी तिलस्मी उपन्यासकारों में देवकी नन्दन खत्री प्रमुख है। उनके उपन्यास में मध्यवर्ग का चित्रण नहीं मिलता उच्चवर्ग का ही मिलता है। 'चन्द्रकांता 'और 'चन्द्रकांता संतति' जैसे उपन्यासों ने पाठकों पर जादू का काम किया। उन्होंने अलौकिक प्रतिभा से ऐयारी तिलस्म को मोहक और जनसुलभ बनाने का सफल प्रयत्न किया। 'काजर की कोठरी' में उन्होंने ज़मीनदार और वेश्या - जीवन पर प्रकाश डालकर समाज की गंभीर समस्या का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। तिलस्मी उपन्याय जगत में इनके बाद दुर्गाप्रसाद खत्री आते हैं। पिता की अधूरी कृति 'भूतनाथ' को पूर्ण करके मानो दुर्गाप्रसाद ने पितृश्रण का शोध किया।

जासूसी उपन्यासों की धारा में मुर्धन्य - विभूति श्री गोपालराम गहमरी है। घटनाओं का कुशल संयोजन ऐसे उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है। 'खूनी कौन है', 'जासूस की भूल' आदि उनके प्रमुख अन्यास है। इन्होंने सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं। इनमें 'डबल बीबी' 'दो बहनें' प्रमुख हैं।

पूर्व प्रेमचन्द युग के एक सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकार के रूप में ब्रजनन्दन सहाय आते हैं। 'राधाकांत', 'आरण्यवाला' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। इनमें आर्थिक असमानता और पूँजीवादी व्यवस्था का मूल्यांकन हुआ है। प्रगतिशील दृष्टि के कारण इसमें पाश्चात्य संस्कृति की अच्छाइयों का समर्थन की देख सकते हैं।

पूर्वप्रेमचन्दयुग में हिन्दी उपन्यास ऐयारी या तियस्मी के चमत्कर देख रहे थे। यद्यपि इसमें सामाजिक समस्याओं का चित्रण है तो भी अधिकांशतः मनोरंजन प्रधान है। इन उपन्यासकारों में अधिकांशतः अपने देश के और भाषा के पूर्वज थे। आज जिस मध्यवर्ग की समस्याओं का अंकन आधुनिक युग के उपन्यासकार कर रहे हैं, उसी मध्यवर्ग की समस्याओं तथा मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि प्रेमचन्द पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य ने प्रस्तुत किया है। इस बात में सन्देह नहीं कि आगे आनेवाले उपन्यासकारों को यह ज़रूर मार्गदर्शक बन गया होगा।

4 - प्रेमचंद और उनका उपन्यास - साहित्यः कथावस्तु

एक बार डॉ. धीरेन्द्र वर्म प्रेमचंदजी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था - "प्रेमचंदजी हिन्दी के प्रथम सर्वोत्कृष्ट मौलिक लेखक थे। उन्होंने हिन्दी पाठकों की अभिरुचि को चंद्रकाँता के गर्त से निकालकर सुदृढ़ साहित्यिक नींव पर स्थिर किया। बंकिम बाबू तथा अंग्रेज़ी उपन्यासों की माँग को तो उन्होंने बिलकुल ही रोक दिया। हिन्दी - साहित्य के उस विशेष क्षेत्र में कादम्बरी व हितोपदेश के अनुवादों का लोकप्रिय होना तो सम्भव न था। इसके अतिरिक्त प्रेमचंदजी ने समाज के असाधारण वर्गों की ओर से दृष्टि हटाकर मध्यम तथा निम्न श्रेणी के लोगों की नित्य - प्रति की समस्याओं की ओर हिन्दी पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। किसान, मजदूर, क्लर्क, दुकानदार, जमींदार, साहूकार, अफसर और पूँजीपतियों से संघर्ष का जैसे जीवन रूप प्रेमचंदजी ने चित्रित किया है, वैसा उससे पहले हिन्दी - साहित्य में कभी नहीं हुआ था।" (हंस : प्रेमचन्द स्मृति अंक, पृष्ठ 800)

उपर्युक्त उद्धरण से प्रेमचंदजी की महानता का पता स्पष्ट रूप से चलता है। प्रेमचन्दजी के हिन्दी उपन्यास जगत् में अवतीर्ण होने से पूर्व तीन प्रकार की रचनाएँ हो रही थीं - (1) तिलस्मी और ऐयारी के उपन्यास, (2) कामुकतापूर्ण सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास और (3) जासूसी और साहसपूर्ण उपन्यास। इन तीनों वर्गों का नेतृत्व क्रमशः देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी - ये तीनों लेखक कर रहे थे। इनके अतिरिक्त बँगला, मराठी और अंग्रेज़ी के उपन्यासों के अनुवादकों का भी हिन्दी में बोलबाला था। तत्कालीन उपन्यासों के स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए सुयोग्य समालोचक डॉ. इंद्रनाथ मदान ने एक स्थान पर लिखा है, हिन्दी की जनता घटनाओं की भूल - भुलैयों से भरे तिलस्मी; ऐयारी अथवा जासूसी उपन्यास पढ़ती थी और उसमें अद्भुत रस प्राप्त करती थी। यह न होता था तो वह रीतिकालीन श्रृंगारिकता से युक्त सामाजिक उपन्यास पढ़ती थी और अपनी सस्ती भावुकता के लिए वहाँ भोजन प्राप्त करती थी। जनता का जो अंग अद्भुत और श्रृंगार के इन उपन्यासों को पसन्द नहीं करता था और जिसमें नैतिकता के प्रति आग्रह था, वह अपने लिए बँगला, मराठी और अंग्रेज़ी के अनुवादों को ही वरदान समझता था। इस प्रकार हिन्दी पाठक के पास उपन्यास के नाम पर ठोस जीवन के धरातल पर आधारित अपनी कोई वस्तु नहीं थी। केवल नैतिकता की दृष्टि से भी तत्कालीन उपन्यासों का स्तर बहुत नीचा था। उनमें जिन घटनाओं का वर्णन होता था, वे अलौकिक व अस्वाभाविक होती थीं। पात्र भी किसी काल्पनिक जगत् के होता था, वे अलौकिक व अस्वाभाविक होती थीं। पात्र भी किसी काल्पनिक जगत के होते थे, जिनमें न तो मानवीय रूप की सहज स्वाभाविक रूप - रेखाएँ ही दृष्टिगोचर होती थीं और न ही उनमें उस व्यक्तित्व का विचार हो पाता या जिससे वे सजीव दिखाई पड़ें। कथोपकथन रटे - रटाए व्याख्यानों - जैसा या विद्धानों के शास्त्रार्थ - जैसा होता था, जिसमें संभाषण की - सी स्वाभाविकता का पता पाना कठिन था। देश और काल की परिस्थितियों के चित्रण की बात ही क्या? औरंगजेब को अपने ड्राइवर के साथ मोटर पर घूमते हुए दिखा देना उस युग के उपन्यासकार के लिए कोई अनोखी बात नहीं थी। रही उद्देश्य की बात - उद्देश्य तो प्रायः सबका एक था; जनता का मनोरंजन करना। वे उपन्यास समय काटने के एक हीन कोटि के साधन मात्र थे, उनमें कलात्मकता एवं सामाजिकता का अभाव था। वस्तुतः प्रेमचन्द के पदार्पण से पूर्व हि न्दी - उपन्यास एक अविकसित कलिका की भाँति अस्फुट एवं चेतनाहीन - सा था, किन्तु दिवाकर की प्रथम रश्मियों की भाँति प्रेमचन्द की पावन - कला का पुनीत स्पर्श पाकर वह जाग पड़ा, खिल उठा और मुस्कुराने लगा।

<u>व्यक्तित्व और जीवन</u>

साहित्य की मूल आत्मा को पहचानने के लिए उनके रचयिता के व्यक्तिगत जीवन का अध्ययन भी अपेक्षित है। मुंशी प्रेचन्दजी का जन्म सन् 1880 में लमही नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता डाकखाने में नौकरी करते थे तथा उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। आठ वर्ष की अल्पावस्था में ही उन्हें मातृवियोग सहन करना पड़ा। तदनन्तर उनके पिता ने दूसरी विवाह कर लिया -फलतः प्रेमचन्दजी सौतेली माँ के व्यवहार की कटुता का अनुभव भी प्राप्त कर सके।

इनके परिवार में उर्दू पढ़ने की प्रथा थी। अतः आरम्भ में इन्हें भी उर्दू की शिक्षा दी गयी। आगे चलकर उन्होंने हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की। इसी बीच उनका विवाह हो गया था। विवाह के कुछ दिनों पश्चात् ही उनके पिता का देहान्त हो गया, अतः उन्हें अध्ययन - काल में पर्याप्त आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कालेज में भी वे प्रविष्ट हुए थे, किन्तु इण्टर की परीक्षा में असफल हो जाने के कारण तथा आर्थिक परिस्थितियों से बाध्य होकर उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी और एक पाठशाला में कार्य करने लग गए। आगे चलकर स्वाध्याय से उन्होंने बी.ए. तक की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं और डिप्टी इन्स्पेक्टर के पद पर पहूँच गए।

प्रेमचन्दजी को उपन्यास पढ़ने का शौक बाल्यावस्थआ से ही था। उन्होंने मेरी पहली रचना शीर्षक लेख में अपने अध्ययन की चर्चा करते हुए लिखा है - "दो तीन वर्षों में मैंने सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होंगे। जब उपन्यासों का स्टॉक समाप्त हो गया तो मैंने नवलकिशोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े और तिलस्मी ग्रन्थों के 17 भाग उस वक्त निकल चुके थे। एक - एक भाग बड़े सुन्दर रायल आकार के दो - दो हजार पृष्ठों से कम न होगा और इन 17 भागों के उपरान्त उसी पुस्तक के अलग - अलग प्रसंगों पर पच्चीस भाग छप चुके थे। इनमें से भी मैंने कई पढ़े।" अध्ययन की इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि प्रेमचन्दजी ने छोटी आयु में ही लेखनी ग्रहण कर ली। सन् 1901 में अर्थात् बीस - इक्कीस वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने अपना पहला उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया था। सन् 1902 में उनका पहला तथा 1904 में दूसरा उपन्यास प्रकाशित हुआ। दूसरी ओर उनकी कुछ कहानियाँ 'जमाना' (उर्दू) में निकलीं। उनकी पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजे वतन' 1909 में छपा, जिसमें स्वराज्य की प्रेरण होने के कारण सरकार ने जब्त कर लिया। आगे चलकर वे हिन्दी में लिखने लग गए।

सरकारी सर्विस में रहते हुए वे स्वतंत्रतापूर्वक लिख न सकते थे, अतः उन्होंने डिप्टी - इन्स्पेक्टर के पद से त्याग - पत्र देकर चर्खों की दूकान खोल ली। जब इससे काम नहीं चला तो वे एक प्राइवेट स्कूल में हेडमास्टर बन गए। किन्तु परिस्थितियोंवश वहाँ से भी त्याग पत्र दे दिया और पत्र - पत्रिकाओं का सम्पादन करने लग गए। जीवन के अन्तिम दिनों में वि फिल्म - जगत् में भी गये थे, किन्तु वहाँ के दूषित वातावरण के कारण ठहर नहीं सके।

वस्तुतः प्रेमचन्दजी की जीवन - गाथा गरीबी, संघर्ष और त्याग से भरपूर है। घोर आर्थिक संकटों का सामना करते हुए भी उन्होंने बड़े - से बड़े आर्थिक लोभ को ठुकरा दिया। एक बार अलवर के राजा साहब ने उन्हें चार सौ रुपये मासिक पर आमंत्रित किया था, किन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता का ध्यान रखते हुए उन्होंने उस आमंत्रण को ठुकरा दिया। सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उनका विद्रोह कितना तीव्र था - यह इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने अपना दूसरा विवाह एक विधवा के साथ किया। प्रेमचन्द के समर्थ आलोचक डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है - "प्रेमचन्द इतना सादा जीवन बिताते थे कि कल्पना नहीं कर सकता। वे

देहाती किसान के प्रतिरूप थे, जिनमें अहंकार नाम - मात्र को भी नहीं था। जीवन की सभी कटुताएँ सहते हुए भी वे प्रसन्न - चित होकर आगे बढ़ते थे, परन्तु देश की दशा से वे सदैव दुखी हुआ करते थे और उसकी मुक्ति का उपाय सोचते - सोचते खो - से जाते। वे देश भक्त थे। समाज विशेष या सम्प्रदाय - विशेष के समर्थक न थे। वे सच्चे अर्थों में हिन्दुस्तानी थे .....उनका बाहर - भीतर एक - सा था, कथनी - करनी में भेद करना वे न जानते थे, साहित्य और जीवन दोनों उनके लिए एक - दूसरे के पर्यायवाची थे। इसिलिए यह कहना कि प्रेमचन्द मनुष्य के रूप में साहित्यकार से भी अधिक महान् थे, सोलह आने ठीक है"।

प्रेमचन्द इतने बड़े लेखक होते हुए भी दरिद्रता में जन्म, दरिद्रता में पले और दरिद्रता से ही जूझते - जूझते समाप्त हो गए। "उन्होंने अपने को सदा मजदूर समझा। बीमारी की हालत में भी मृत्यु के कुछ दिन पहले तक भी, वे अपने कमजोर शरीर को लिखने केलिए मजबूर करते रहे। मना करने पर कहते मैं मजदूर हूँ, मजदूरी किए बिना मुझे भोजन करने का अधिकार नहीं"। - (डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी)। अस्तु, प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रेमचन्द महान् थे। उन्होंने जीवन में वह साधना की थी, जिसने उनके साहित्य को चरमोत्कर्ष तक पहूँचा दिया।

औपन्यासिक रचनाएँ

प्रेमचन्द का साहित्य जहाँ गुणों की दृष्टि से उत्कृष्ट है,वहाँपरिणाम की दृष्टि से भी भारी है। उनके उपन्यासों की तालिका इस प्रकार है - वरदान (1902), प्रतिज्ञा (मूल 1906), सेवासदन (1916), प्रेमश्रम (1922), रंगभूमि (1927), गबन (1931), कर्मभूमि (1922), निर्मला (1923), काया कल्प (1928), गोदान (1936), मगलसूत्र (अपूर्ण)। इनका संक्षिप्त परिचय क्रमशः प्रस्तुत किया जाता है -

(1) वरदान - 'वरदान' में प्रेम और विवाह की समस्या का चित्रण हुआ है - बृजरानी और प्रताप बचपन से ही साथ - साथ रहे थे तथा दोनों के विवाह की भी चर्चा होने लग गयी थी, किन्तु किसी कारण बृजरानी का विवाह एक डिप्टी के पुत्र कमलाचरण से हो गया। कमलाचरण एक उच्छृंखल स्वभाव का युवक था। यद्यपि प्रारम्भ में पति - पत्नी की नहीं बनी, किन्तु बृजरानी के प्रयत्न से कमलाचरण में परिवर्तन आने लगा। अचानक कमलाचरण का देहान्त हो जाता है। प्रताप बृजरानी के विवाह के अनन्तर ही साधु हो गया था। अन्त में सभी प्रमुख पात्र त्याग और संयम का पथ अपनाते हुए देश - सेवा में लग जाते हैं।

उपन्यास - कला की दृष्टि से वरदान कोई प्रौढ़ रचना नहीं है। इसकी कथावस्तु शिथिल है। प्रताप इसका प्रमुख पात्र है और कथानक की प्रगति में योग देता है, किन्तु उसके चरित्र में वह महानता नहीं आ पाई, जो उसके लिए अपेक्षित थी। वस्तुतः यह उपन्यास एक प्रेम - कहानी मात्र है जिसका पर्यवसान देश - प्रेम में हुआ था।

(2) प्रतिज्ञा - प्रोफसर दीननाथ और अमृतराय वकील - दोनों गहरे मित्र थे। प्रो. दीननाथ अभी अविवाहित थे, जबकि अमृतराय विधुर थे। अमृतराय का दूसरा विवाह उनकी कुमारी साली प्रेमा से होने की संभावना थी, क्योंकि दोनों एक दूसरे को चाहते थे तथा प्रेमा के पिता बद्रीप्रसाद का ऐसा ही विचार था। किन्तु इसी बीच एक घटना घटित हुई। एक समाज - सुधारक नेता के व्याख्यान से प्रभावित होकर अमृतराय ने प्रतिज्ञा कर ली कि वे किसी विधवा से विवाह करेंगे। ऐसी स्थिति में उन्होंने प्रेमा से विवाह करना अस्वीकार कर दिया। फलतः प्रेमा का विवाह प्रोफेसर दीनानाथ से हो गया।

अमृतराय ने अपना जीवन समाज - सेवा में अर्पित कर दिया और उन्होंने एक वनिताश्रम स्थापित कर दिया। प्रेमा इनके इस त्याग पर मुग्ध थी और वह अपने पति के सम्मुख भी अमृतराय की प्रशंसा किया करती थी। इससे दीनानाथ अपने मित्र से ईर्ष्या करने लगे। वे स्पष्ट रूप में उनके विरोधी हो गए। किन्तु अन्त में उन्होंने अपनी भूल स्वीकार कर ली और वे अमृतराय को वनिताश्रम के संचालन में यथाशक्ति सहयोग देने लगे। इसमें प्रासंगिक कहानी एक पूर्ण नामक विधवा की भी चलती है, जिसके द्वारा वैधव्य - जीवन की कटुता पर प्रकाश पड़ता है।

वस्तुतः यह एक आदर्शवादी दृष्टिकोण से लिखित रचना है। अमृतराय का चरित्र अन्त तक आदर्श रहता है। सारा उपन्यास विधवाओं की समस्या पर आधारित है। विधवा - समस्या का हल वनिताश्रम के रूप में दिया गया है।

(3) <u>सेवासदन</u> - 'सेवा - सदन' की नायिका सुमन है, जो दारोगा कृष्णचन्द की कन्या थी। दारोगा कृष्णाचंद पहले रिश्वत नहीं लेते थे, किन्तु सुमन के विवाह के लिए उन्होंने ऐसा भी किया, किन्तु वे इस कला में प्रवीण न होने के कारण पकड़े गये और अन्त में उन्हें पाँच वर्ष के कारावास का दण्ड प्राप्त हुआ। कृष्णाचंद की पत्नी अपनी लड़कियों - सुमन और शान्ता - को साथ लेकर अपने भाई उमानाथ के यहाँ चली गया। दहेज के अभाव में सुमन का विवाह एक अधेड़ अवस्था के व्यक्ति - गजाधर से कर दिया गया। दोनों में अनबन रहती थी। सुमन के घर के सामने ही भोली नामक वेश्या रहती थी। घर, समाज, मन्दिर एवं विभिन्न उत्सवों पर भोली के आदर - सम्मान को देखकर सुमन बहुत प्रभावित हुई। दूसरी ओर पग - पग पर पति के द्वारा अपमानित होकर वह यह सोचने को विवश हुई कि समाज में पत्नी का अधिक महत्व है या वेश्या का। एक बार सुमन गजाधर के मित्र पदमसिंह के यहाँ किसी उत्सव में गयी हुई थी, वहाँ से उसे घर लौटने में रात को बहुत देर हो गयी। इस पर गजाधर ने उसे घर से निकाल दिया। वह पद्मसिंह के घर चली गयी, किन्तु वे भी उसे अधिक दिन तक नहीं रख सके। अन्त में उसे भोली के यहाँ आश्रय प्राप्त हुआ और उसने वेश्या - जीवन की दीक्षा प्राप्त की।

आगे चलकर सुमन ने वेश्या वृत्ति छोड़कर विधवा आश्रम में आश्रय प्राप्त किया, किन्तु पहले की वेश्या होने के कारण उसे वहाँ से निकाल दिया गाय। वह अपनी छोटी बहिन शान्ता के पास रहकर पवित्रतापूर्वक जीवन बिताने लगी, किन्तु शान्ता के परिवार के लोग भी उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। अन्त में उसने एक रात्रि शान्ता का घर छोड़ दिया और स्वामी गजानन्द की कुटिया में आश्रय लिया। वे स्वामी गजानन्द सुमन के पति गजाधर ही थे। दोनों ने मिलकर सेवा सदन की स्थापना की।

इस प्रकार इस कृति में वेश्या - समस्या का सुक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। कोई भी नारी वेश्या बनने को क्यों विवश होती है ? और फिर वह वेश्या - जीवन को क्यों नहीं छोड़ पाती ? इन प्रश्नों का उत्तर 'सेवा - सदन' में मिलेगा। प्रेमचन्द जी ने इन दोनों ही परिस्थितियों का उत्तर दायित्व समाज पर डाला है। समाज में नारी की प्रतिष्ठा पत्नी की अपेक्षा वेश्या के रूप में अधिक है। पत्नी के रूप में सुमन को जहां पग - पग पर ठोकरें खानी पड़ती है, वहीं वेश्या भोली को बड़े -बड़े वकील, प्रोफेसर, सरकारी अफसर उच्च वर्ग के प्रायः सभी लोग सम्मानपूर्वक घर बुलाते हैं। सुमन की अपेक्षा भोली का जीवन अधिक सुखमय एवं ऐश्वर्यपूर्ण है। अतः ऐसी स्थिति में पति द्वारा परित्यक्त, निराश्रित अबला का वेश्यावृत्ति अपना लेना स्वाभाविक है।

दूसरा प्रश्न है - वेश्याओं के सुधार का। इसमें भी हमारा समाज बाधक है। जब सुमन जैसी वेश्याएँ अपनी भूल को सुधारना चाहती हैं तो अपने कुल परिवार एवं समाज से उन्हें कोई सहयोग नहीं मिलता। वेश्यावृत्ति छोड़े देने पर भी समाज में सुमन के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ तक कि विधवाश्रम से भी उसे निकाल दिया जाता है। प्रेमचन्दजी ने इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए इस स्थिति की नारियों के लिए अलग सेवासदन या सेवाश्रम स्थापित करते हुए इस स्थिति की नारियों के लिए अलग सेवासदन या सेवाश्रम स्थापित करने का सुझाव दिया है; किन्तु वह सुझाव बहुत उपयोगी नहीं है। पहले तो इतने अधिक सेवा - सदन की समस्याएँ समाज से अलग ही रहेंगी। वे समाज में घुल - मिलकर उसका अंग नहीं बन सकेंगी। ऐसी स्थिति में सेवा सदन ही 'वेश्यालय' बन जाएं तो क्या आश्चर्य है? वस्तुतः जब तक हमारे समाज की स्थिति और उसका दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं हो जाता, तब तक इस समस्या का कोई व्यक्तिगत या सामाजिक हल प्रस्तुत करना कठिन है।

(4) <u>प्रेमाश्रम</u> - 'प्रेमाश्रम' में किसान - जमींदार के सम्बन्धों का चित्रण करते हुए एक जमींदार परिवार की कहानी प्रस्तुत की गयी है। इसका प्रमुख पात्र ज्ञानशंकर है, जिसकी जमींदारी में लखनपुर गाँव है। वह अपने चाचा प्रभाशंकर के ही साथ रहता है, क्योंकि अभी उनमें बँटवारा नहीं हुआ था। ज्ञानशंकर अत्यन्त स्वार्थी, कूटनीतिज्ञ एवं क्रूर व्यक्ति है। वह एक ओर अपने चाचा प्रभाशंकर और अपने बड़े भाई प्रेमशंकर की जमींदारी का हिस्सा हड़प लेना चाहता है, तो दूसरी ओर अपने किसानों से अन्यायपूर्वक अधिक - से अधिक रकम प्राप्त कर लेना चाहता है। इतना ही नहीं, वह अपने ससुराल की जायदाद व सम्पत्ति के लिए भी प्रयत्न करता है। वह अपनी विधवा साली को प्रेम के डोर डालकर अपने चंगुल में फँसा लेता है और उसकी जमींदारी को हस्तगत कर लेने का प्रयास करता है। इस प्रकार सारा उपन्यास ज्ञानशंकर के ही क्रिया - कलापों पर आश्रित है।

प्रभाशंकर पुरानी पीढ़ी में जमींदार के प्रतिनिधि है; जो किसानों के साथ सहानुभूति एवं भाईचारे का व्यवहार करते हैं, जबकि ज्ञानशंकर नई पीढ़ी के अत्याचारी जमींदारका प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रेमशंकर अपना सर्वस्वत्याग करके किसानों की सेवा के लिए 'प्रेमाश्रम' स्थापित करते हैं। ज्ञानशंकर का पुत्र मायाशंकर प्रेमचन्दजी के स्वप्नों का जमींदार है, जो कि अपने सारे अधिकार किसानों की सेवा में समर्पित कर देता है। इस प्रकार जमींदार कैसा था? कैसा है ?और कैसा होना चाहिए? इन तीनों प्रश्नों के उत्तर क्रमशः प्रभाशंकर, ज्ञानशंकर और मायाशंकर के रूप में प्राप्त होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जमींदार के व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का जैसा विश्लेषण इस उपन्यास में हुआ है, वैसा किसी अन्य रचना में मिलना सम्भव नहीं।

(5) <u>रंगभूमि</u> - 'रंगभूमि' लगभग एक हजार पृष्ठों का बृहत्काय उपन्यास है। इसमें घटनाओं की ऐसी बहुलता, कथानक की ऐसी विशदता और पात्रों की ऐसी प्रचुरता मिलती है कि पाठक स्तब्ध रह जाता है। 'गोदान' लिखने से पूर्व प्रेमचन्दजी ने इसे अपना सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना था। इसमें कथा - वस्तु का केन्द्र मुख्यतः एक ईसाई कुटुम्ब है। इस कुटुम्ब के प्रधान हैं - मि. जानसेवक जो कि पांडेपुर गाँव में एक सिगरेट का कारखाना स्थापित करना चाहते हैं। इस कारखाने के लिए वे सूरदास की जमीन प्राप्त करना चाहते हैं; किन्तु सूरदास उसे किसी भी मूल्य पर नहीं देना चाहता। सूरदास भीख माँगकर जीवन निर्वाह करता था। किन्तु साथ ही वह गाँव का सबसे अधिक परोपकारी, उदार एवं उच्च चरित्र का व्यक्ति था। वह अपनी जमीन गाँव की सेवा

CUP/8413/11/500/SDE —2

के लिए दान करना चाहता था। मि. जानसेवक बड़े - बड़े अधिकारियों की सहायता से सूरदास की जमीन पर अधिकार प्राप्त कर लेने का प्रयत्न करते हैं। सूरदास अपने अधिकारों के लिए सत्याग्रह और संघर्ष करता हुआ आत्म - बलिदान कर देता है।

दूसरी कथा मि. जान - सेवक की लड़की कुमारी सोफिया से सम्बन्ध रखती है। वह नये विचारों की स्वाभिमानिनी लड़की है। एक बार वह कुँवर विनयसिंह को आग से बचाती हुई घायल हो जाती है। इस घटना के पश्चात् विनयसिंह और सोफिया परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। उनकी यह प्रेम - कहानी जीवन की अनेक परिस्थितियों को पार करती हुई आगे बढ़ती है। सोफिया के माता - पिता उसका विवाह मजिस्ट्रेट क्लर्क से करना चाहते हैं। किन्तु सोफिया जीवन - भर विनयसिंह की सहायता करती रहती है और अन्त में विनयसिंह के आत्म - बलिदान के अनन्तर आत्महत्या कर लेती है।

वस्तुतः इस उपन्यास का लक्ष्य त्याग, प्रेम और बलिदान के आदर्श को प्रस्फुटित करना है। सूरदास तत्कालीन लोक - नेता महात्मा गाँधी की ही प्रतिमूर्ति हैं, जो कि अपने अधिकारों के लिए बड़ी - से बड़ी शक्ति से भी संघर्ष करने के लिए प्रस्तुत है त्याग और बलिदान ही उसके बड़े शास्त्र हैं। मृत्यु - शय्या पर पड़ा हुआ भी वह शासक वर्ग से कहता है - ".....तालियाँ क्यों बजाते हो, यह तो जीतने वालों का धर्म नहीं? तुम्हारा धर्म तो है। हमारी पीठ ठोकना। हम हारे तो क्या, मैदान से तो नहीं भागे, रोये तो नहीं, धाँधली तो नहीं की। फिर खलेंगे, जरा दम लेने दो, हार - हराकर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे, और एक - न - एक दिन हमारी जीत होगी; अवश्य होगी"। प्रेमचन्दजी की यह भविष्यवाणी 29 वर्ष पष्चात् ही सत्य प्रमाणित हो गयी।

सोफिया और विनय का प्रेम कुटुम्ब के लोगों, समाज के नियमों एवं धर्म के आदर्शों को समर्पित न होता हुआ भी सच्चा है, पवित्र है और महान है। दोनों के प्रणय की गम्भीरता एवं पवित्रता के प्रमाण में उनके वे शब्द देखे जा सकते हैं - "तुम मेरे लिए आदर्श हो। तुम्हारे प्रेम का आनन्द मैं कल्पना के द्वारा ही ले सकता हूँ। डरता हूँ कि तुम्हारी दृष्टि में गिर न जाऊँ। अपने को कहाँ तक गुप्त रखूँगा? तुम्हें पाकर मेरा जीवन नीरस हो जायेगा, मेरे उद्योग और उपासन की कोई वस्तु न रह जायेगी"। (विनय) दूसी ओर सोफिया का विश्वास है - "प्रेम एक भावनागत विषय है, भावना से ही उसका पोषण होता है, भावना ही से वह जीवित रहता है और भावना से ही लुप्त हो जाता है। वह भौतिक वस्तु नहीं है। तुम मेरे हो, यह विश्वास मेरे प्रेम को सजीव और सहिष्णु रखने के लिए काफी है"।

(6) <u>कायाकल्प</u> - 'कायाकल्प' में सामाजिक समस्याओं के साथ - साथ जन्म जन्मान्तर तक चलते रहने वाले प्रेम की एक अद्‌भुत कहानी का वर्णन किया गया है। चक्रधर नामक एक युवक एम. ए. करने के अनन्तर जगदीशपुर के दीवाना ठाकुर हरिसेवक सिंह की पुत्री मनोरमा के शिक्षक नियुक्त हो जाते हैं। मनोरमा चक्रधर से प्रेम करने लगती है। उधर चक्रधर किसी कार्य से आगरा जाते हैं, जहाँ अहल्या नामक युवती उनकी ओर अकर्षित होती है। उनका अभिभावक यशोदानन्दन चक्रधर का विवाह अहल्या से निश्चित कर लेता है। आगे चलकर दोनों को विवाह हो जाता है। और उनके एक पुत्र होता है जिसका नाम शंखधर रखा गया। मनोरमा की बीमारी का तार पाकर चक्रधर अपने पुत्र व पत्नी के सहित उसके पास पहूँचते हैं। चक्रधर के आने से मनोरमा स्वस्थ होने लगती है।

चक्रधर की पत्नी अहल्या वस्तुतः जगदीशपुर के राजा की ही लड़की थी, जो बचपन में खो गयी थी, इस तथ्य का प्रमाण मिलने पर अहल्या को राज्य का भाग प्राप्त हो गया। किन्तु राज्य - प्राप्ति के अनन्तर अहल्या अपने पति और पुत्र की उपेक्षा करने लगी। अन्त में अहल्या की मृत्यु हो जाती है।

दूसरी कहानी जगदीशपुर की महारानी देवप्रिया से सम्बन्ध रखती है। उनका विवाह महेन्द्रसिंह से हुआ था, किन्तु विवाह की प्रथम रात्रि में ही उनका देहान्त हो जाता है। अगले जन्म में वे ही विक्रमसिंह के रूप में अवतरित हुए और महारानी देवप्रिया से मिले, किन्तु उनका पुनः देहावसान हो गया। इसके अनन्तर वे शंखधर के रूप में अवतरित हुए और चिर - संगिनी देवप्रिया से मिले। इस प्रकार यह उपन्यास अनेक अलौकिक और अस्वाभाविक घटनाओं से परिपूर्ण है। इसमें आंशिक रूप से हिन्दू - मुस्लिम दंगों की समस्या का चित्रण हुआ है। यदि लेखक को पुनर्जन्म की गुत्थी सुलझाने का शौक न होता तो यह उपन्यास भाव, भाषा एवं चरित्र - चित्रण की दृष्टि से सफल रचना सिद्ध हो सकता था, किन्तु अध्यात्मिक चमत्कारों ने इसके वैभव को श्रीहीन कर दिया है।

(7) <u>गबन</u> - इसमें एक मध्यवर्गीय परिवार की परिस्थितियों का चित्रण यथार्थवादी शैली में हुआ है। रामनाथ एक म्युनिसिपल आफिस का कर्मचारी है। उसका विवाह जालपा से हुआ था। अपनी पत्नी की आभूषण - प्रियता को तुष्ट करने के लिए रामनाथ सरकारी रकम गबन करके उसे चंद्रहार बनवा देता है। आगे चलकर गिरफ्तारी के भय से वह कलकत्ता भाग जाता है, किन्तु किसी अन्य कारण से वहाँ गिरफ्तार हो जाता है। अन्त में जालपा की सहायता से वह मुक्त हो जाता है। इस प्रकार इसमें स्त्रियों के आभूषण - प्रेम एवं मध्यवर्गीय पुरुषों के मिथ्या आत्मदर्शन का दुष्परिणाम दिखाया गया है। डॉ. रामरतन भटनागर के शब्दों में - "समाज के सच झूठ के मान, उसके दिखाने की भावना, उसकी न्याय - भावना का खोखलापन, उसके प्रेम और ईश्वर - विश्वास की खिल्ली जैसी इस उपन्यास में मिलेगी, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है"।

(8) <u>निर्मला</u> - इस छोटे से उपन्यास में दहेज प्रथा एवं अनमेल विवाह की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। निर्मला की विधवा माँ दहजे देने से असमर्थ होने के कारण उसका विवाह अधेड़ अवस्था के एक विधुर तोताराम से कर देती है। तोताराम की पहली पत्नी से तीन संतानें थीं तथा उनका सबसे बड़ा लड़का निर्मला की आयु का था। अतः तोताराम अपने इस बड़े पुत्र और निर्मला के सम्बन्ध को सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। इस सन्देहशीलता के परिणाम से अन्त में सारा घर चौपट हो जाता है। निर्मला की मृत्यु के साथ - साथ उपन्यास की समाप्ति हो जाती है।

इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने समस्या का कोई समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं किया है। आदि से अन्त तक वह यथार्थवादी ही रहता है। यहाँ से उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन परिलक्षित होता है।

(9) <u>कर्मभूमि</u> - इसमें हिन्दू मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार, किसानों के उत्थान आदि की प्रेरणा दी गयी है। इसका नायक अमरकान्त है, जो कि विवाहित होते हुए भी एक मुस्लिम कन्या सकीना से प्रेम करता है। आगे चलकर वह देश - सेवा के कार्य में लग जाता है और सकीना को भी इसकी प्रेरणा देता है। पीड़ितों, दलितों एवं अछूतों के हित के लिए वह कई यातनाएँ भुगतता है। वह एक बार किसानों के आन्दोलन का नेतृत्व करता हैं। फलस्वरूप जेल चला जाता है। अमरकान्त के प्रभाव से उसका मित्र सलीम, जो कि आई.सी.एस. होकर उस जिले का अधिकारी बन चुका था, सरकारी

सर्वस छोड़कर किसानों की सेवा में लग गया। अन्त में किसानों का आन्दोलन सफल हो गया। गवर्नर ने पाँच व्यक्तियों की कमेटी नियुक्त कर दी; जिसमें अमरकान्त और सलीम भी सम्मिलित थे। इस कमेटी को किसानों की माँगों के सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार दे दिया गया। वस्तुतः इस उपन्यास में तत्कालीन आन्दोलन की प्रतिच्छाया स्पष्ट रूप में अंकित हुई है।

(10) <u>गोदान</u> - प्रेमचंदजी का अंतिम उपन्यास गोदान है, जो उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसका नायक होरी है, जो कि भारतीय किसानों का प्रतिनिधि है। उसका पुत्र गोबर भारतीय मजदूरों का प्रतिनिधित्व करता है। होरी जीवन के आरम्भ से लेकर अपनी अन्तिम श्वास तक भरपूर मेहनत करता है, किन्तु फिर भी वह अपने बच्चों को पेट - भर रोटी नहीं खिला सकता। जमींदार, महाजन, पटवारी, पुजारी, पुरोहित, पुलिस वाले आदि - आदि किस प्रकार किसानों के पसीने की कमाई को हड़प कर जाते हैं, इसका सजीव चित्रण होरी की जीवन गाथा में हुआ है। उसके जीवन की एक छोटी - सी आकांक्षा है - अपने द्वार पर गौ बाँधना। इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए वह छल और बल दोनों का प्रयोग करता है, किन्तु वह उसे कभी पूरी नहीं कर पाता। मृत्यु के अनन्तर भी यही आकांक्षा गोदान - ब्राह्मण को 'गोदान' - के रूप में उपस्थित होती है। आगे होरी को वैतरणी पार करने के लिए सवा रुपये की कृत्रिम गौ प्राप्त होती है।

'गोदान' में शोषित वर्ग के जीवन की समस्याओं का चित्रण मार्मिक रूप में किया गया है, किन्तु पूर्ववर्ती उपन्यासों की भाँति इसमें लेखक ने कोई समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं किया है। इसका नायक भी आदर्श महामानव न होकर एक साधारण किसान है, जिसके व्यक्तित्व और चरित्र में अनेक दुर्बलताएँ विद्यमान हैं। अस्तु, गोदान में प्रो. मेहता के चरित्र को छोड़कर शेष पात्रों के चित्रण में प्रायः यथार्थवादी दृष्टिकोण को ही प्रमुखता मिलती है। यथार्थवादी दृष्टिकोण का दूसरी पपरिणाम यह है कि उपन्यास की परिणति दुखपूर्ण स्थिति में हुई है। जहाँ पूर्ववर्ती उपन्यासों में जन - आन्दोलन की अन्त में सफलता दिखाई गयी है, वहाँ 'गोदान' के मजदूरों की (खन्ना के मिल में काम करने वाले) पूँजीपति के विरुद्ध संघर्ष में पराजय होती है। अस्तु, 'गोदान' का लेखक 'आदर्शोन्मुख यथार्थवादी' के स्थान पर शुद्ध यथार्थवादी रह गया है हाँ, नग्न यथार्थवादिता से वह अवश्य दूर है।

'गोदान' समाजवादी रचना है या गाँधीवादी? इस प्रश्न के उत्तर के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। 'गोदान' के समस्त पात्रों के प्रति लेखक की सहानुभूति है। उसने श्रमिक वर्ग के अधिकारों की वकालत स्थान - स्थान पर की है। किसान - मजदूरों की मेहनत पर पलने वाले जमींदारों, सूदखोर महाजनों, पण्डे व पुजारियों तथा मिल मालिकों के जीवन की आलोचना प्रेमचन्दजी ने इस रचना में उसी कटुता से की है, जिस कटुता से कोई साम्यवादी या समाजवादी लेखक कर सकता है। गाँधीवाद साधनों - सत्याग्रह एवं जन - आन्दोलनों की सफलता में भी उन्हें अब विश्वास नहीं रहा है, अतः ऐसी स्थिति में इसे 'समाजवादी' रचना मान लेना सम्भव है। किन्तु गाँधीवादी के कुछ चिन्ह अब भी अवशिष्ट हैं। मि. मेहता की उदारता और उनके प्रभाव से मिस मालती का हृदय परिवर्तन गाँधीवादिता का ही प्रमाण है।

यद्यपि 'गोदान' में कुछ दोष ढूँढ़े जा सकते हैं, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह एक उत्कृष्ट रचना है। यदि उसे अपने युग का सर्वोत्कृष्ट हिन्दी उपन्यास भी कह दें तो अत्युक्ति नहीं होगी।

वस्तुतः प्रेमचन्दजी का उपन्यास - साहित्य युग की परिस्थितियों एवं उसकी समस्याओं का सच्चा दर्पण है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में - "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता

के आचार - विचार, भाषा - भाव, रहन - सहन, आशा - आकांक्ष, दुःख - सुख और सूझ - बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्दजी से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों तक, खोमचे वालों से लेकर बैंकों तक, गाँव से लेकर धारा - सभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता। आप बेखटके प्रेमचन्द का हाथ पकड़कर मेंड़ों पर गाते हुए किसान को, अन्तःपुर में मान किए बैठी प्रियतमा को, कोठे पर बैठी हुई वार - वनिता को, रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोयन्दों को, ईर्ष्या - परायण प्रोफेसरों को, दुर्बल - हृदय बैंकरों को, साहस - परायण चमारिन को, ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारी को, नीचाशय अमीर को दक सकते हैं और निश्चिंत होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा है, वह गलत नहीं है"। (हिन्दी - साहित्यः पृ.438)

कुछ आलोचक प्रेमचन्दजी की तुलना बँगला के रवीन्द्र और शरत् से करते हुए उन्हें कुछ हीन सिद्ध करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भावों की मार्मिकता एवं कला की सूक्ष्मता की दृष्टि से प्रेमचन्द इनसे जरा पीछे हैं, किन्तु भारतीयता का जैसा व्यापक स्वरूप, अपने राष्ट्र की समस्याओं का जैसा गम्भीर चित्रण व अपने युग का जैसा सच्चा इतिहास प्रेमचन्द में मिलता है, वह रवि और शरत् में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेग। जहाँ बंगाली लेखकों की दृष्टि बंगाली समाज तक ही सीमित रही है, वहाँ प्रेमचन्द ने भारत की कोटि - कोटि जनता को एकता का सन्देश दिया है। "वस्तुतः बंग - साहित्य और प्रेमचन्द - साहित्य में वही अन्तर है, जो सूर - साहित्य और तुलसी में है। एक में जीवन के कुछ चुने हुए सरस.पक्षों का ही दिग्दर्शन है और दूसरे में सम्पूर्ण जीवन का"।

5. प्रेमचन्द के उपन्यासः एक आलोचनात्मक परिचय

प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को तिलस्म और ऐय्यारी के मायालोक एवं उपदेश तथा नैतिकता के स्थूल आग्रह वाले संकीर्ण घेरे से मुक्त कर, वास्तविक समस्याओं की स्वस्थ पाठिका प्रदान की। काल्पनिक, अवास्तविक, विस्मयपूर्ण, अलौकिक घटनाओं का बहिष्कार कर 'सेवासदन' में उन्होंने यथार्थ जीवन का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है। 'सेवासदन' में पहली बार यथार्थ जीवन का दुख - दर्द विश्वसनीय ढंग से चित्रित मिलता है। 'सेवासदन' (1916) से लेकर 'गोदान' (1936) तक के सभी उपन्यासों में प्रेमचन्द ने इसी परंपरा का आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत किया।

'सेवासदन' में भारतीय समाज में रहनेवाली स्त्रियों की विषम स्थिति का चित्रण मिलता है। वेश्याओं की समस्या, दहेज प्रथा की समस्या, पुलिस अफसरों की घूसखोरी आदि कई मुद्दों पर उपन्यास प्रकाश डालता है। दारोगा कृष्णचंद्र निष्ठावान और ईमानदार व्यक्ति होने पर भी बाद में उन्हें अपनी ईमानदारी पर पछतावा होता है। पच्चीस साल के बाद रिखत लेना, फिर उसकी गिरफ्तारी और सज़ा प्रमुख घटनायें हैं।

दहेज न जुटा पाना और अनमेल विवाह बेटी सुमन का करवाना पडना और भी गंभीर समस्यायें हैं। आधुनिक परतंत्र नारी की दीन स्थिति का चित्रण सुमन के 'सेवासदन' आश्रय खोलकर वेश्याओं का पुनरुद्धार प्रेमचन्द का अपना आदर्श है। माध्यम से मिलता है वेश्या - समस्या को हल करने केलिए प्रेमचंद ने नारी की आत्म निर्भरता एवं शिक्षा पर महत्व दिया है। आज वेश्या समस्या को हल करने केलिए राजनीतिज्ञों ने कई समाधान निकाले हैं। पर उन पर अमल नहीं किया जाता क्योंकि उससे कई महानुभावों की ऊपरी कमाई मारी जाती है। यही कारण है कि आज भी वेश्या समस्या प्रेमचन्द युग के समान ही नहीं बल्कि और भी ज्वलंत है। इसलिए

प्रस्तुत कृति आज अधिक प्रासंगिक भी है।

प्रेमाश्रम (1922) में ज़मीनदारी प्रथा का विघटन मुख्य विषय है। इस प्रथा के द्वारा होनेवाले कृषकों एवं मज़दूरों के शोषण को कलाकार ने जमीन्दार कृषक के पारस्परिक संबंधों द्वारा विवेचित किया है।

लखनपुर की ज़मीन्दारी के मालिक ज्ञानशंकर तथा उसके चाचा प्रभाशंकर इसके प्रमुख पात्र हैं। प्रेमशंकर ज्ञानशंकर का भाई है। ज्ञानशंकर का शेषण खूब किसानों पर चलता रहता है। ज्ञानशंकर के भाई प्रेमशंकर का अमेरिका से वापस आना तथा संपति का बँटवारा होना, दोनों का चुनाव लडता, प्रेमशंकर द्वारा प्रेमाश्रम नायक आश्रय खोलना, मायाशंकर द्वारा भूमि तथा अधिकार त्यागने की घोषणा करना आदि कई महत्वपूर्ण घटनाएँ इसमें चलती रहती हैं।

ज़मीन्दारों तथा महाजनों का शोषण चित्र इसमें प्रमुख है। इसमें भिन्न प्रकार के पारिवरिक जीवन के चित्र हैं। वकीलों और डाक्टरों की नैतिक सचाई का स्वरूप दिखलाया गया है। किसानों के शोषण का मार्मिक चित्र आद्यंत विद्यमान है। साथ ही लेखक ने क्रांतिकारी विचारों को बलराज व प्रेमशंकर के द्वारा व्यक्त किया है।

आज जमीन्दार नहीं है, पर उनकी जगह महाजन, धनी वर्ग, पुरोहित आदि भी किसानों का शोषण कर रहे हैं। वर्तमान युग में आज भी ज्ञानशंकर जैसे धन लोलुप और स्वार्थी पात्र विद्यमान है।

'निर्मला' (1923) की मूल सपस्या दहेज की है। साथ ही स्त्री की पराधीनता, अनमेल विवाह आदि कई समस्याओं पर भी प्रकाश डालते हैं। उदयभानुलाल की बेटी निर्मला का विवाह भालचन्द्र सिन्हा के पुत्र भुवन मोहन सिन्हा से तय हो जाता है। वे शादी में जी खोलकर खर्च करना चाहते हैं। मगर पत्नी इसके विरुद्ध है। रात को घर चले जाते समय उदयभानुलाल रास्ते पर मारे जाते हैं। धन नहीं होते की वजह शादी नहीं हो पाती है। आखिर एक बूढे आदमी से शादी करना पडता है। इससे अतीव दुखित होती है निर्मला। आखिर भोजन के अभाव में वह मर भी जाती है।

वास्तव में 'निर्मला' भारतीय समाज की एक दर्दनाक कारुणिक कहानी है, जिसमें अर्थ से अधिक महत्व सामाजिक कुसंस्कारों को दिया गया है। 'निर्मला' की प्रमुख समस्या दहेज प्रथा है। इसी वजह बेमेल विवाह भी। आज भी ऐसी कुप्रथाएँ पूर्ण रूप से समाप्त नहीं है। सामाजिक दृष्टि से एक व्यापक जन जागरण ऐसी समस्याओं पर परम आवश्यक है।

'रंगभूमि' (1925) में पूँजीवादी शेशण, शासकवर्गों के अत्याचार की समस्या आदि प्रमुख हैं। उपन्यास का नायक सूरदास को गाँधीजी का प्रतिरूप माना जाता है। वह मातृभूमि के उद्धार केलिए वचनबद्ध है। वह आत्मबल का असली प्रतिनिधि है। प्रेमचन्द का यह बहुत बडा उपन्यास है। इसमें प्रमुख रूप से उच्चवर्ग तथा निम्न वर्ग का ही चित्रण मिलता है। सूरदास और सोफिया इसके प्रमुख पात्र हैं। मिसेज़ जान सेवक पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आ जाती है।

औद्योगीकरण के माध्यम से पूँजीवादी शोषण का चित्रण भी इसमें मिलता है। धर्मों के नाम पर चलनेवाले सामाजिक शोषण का प्रमुख कारण धार्मिक रूढियाँ है। "जीवन - संग्राम में सत्याग्रह द्वारा, दिव्य विजय प्रदान करनेवाली निष्काम कर्म भावना तथा सुदृढ आत्मनिष्ठा का महत्व प्रदार्शित करनेवाले इस उपन्यास में भी मानव - स्वभाव के जटिल रहस्यों की अत्यंत हृदय ग्राही और मनोरंजक व्याख्या की है"। यही 'रंगभूमि' पर जनार्दन प्रसाद झा की राय है।

'कायाकल्प ' (1928) एक प्रकार से आध्यात्मिक एवं काल्पनिक उपन्यास है। फिर भी कहीं - कहीं तत्कालीन समस्याओं का समावेश प्रेमचन्द ने किया है। 'कायाकल्प ' में प्रेमचन्द ने जन्म जन्मांतर, योगाभ्यास, कायाकल्प आदि पर प्रकाश डाला गया है। तहसीलदार मुंशी वज्रधर सिंह के पुत्र चक्रधर, जो एय. ए. पास थे, इसका मुख्य पात्र है। नौकरी पसंद न करनेवाला वह पिता के दवाब के कारण ठाकुर हरिसेवक सिंह की कन्या मनोरमा को पढाता है। उसे वह चाहती भी। चक्रधर का आगरा जाना, वहाँ यशोदानंदन के साथ हिन्दू - मुस्लिम दंगे को रोकना, चक्रधर का अहिल्या से शादी करना आदि कई घटनायें उपन्यास में चलती हैं। दंगों, मार काटों के साथ प्रजा पर राजा का अत्याचार भी हम देख सकते हैं। साथ ही राजा के अंतःपुर का यथार्थ चित्रण भी इसमें हुआ है।

इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने राजाओं के शोषण की ओर संकेत किया है। उपन्यास की शुरूआत में ही प्रेमचन्द ने तहसीलेदारों की घूसखोरी की आदत की ओर संकेत किया है। जब मुंशी वज्रधर तहसीलदार बन जाते हैं, तो उनका कायापलट हो जाता है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने पुनर्जन्म का प्रसंग भी उठाया है। छुआ छूत घुसखोरी, राजा द्वारा प्रजा का शेषण, बेगार की प्रथा, हिन्दु - मुस्लिम दंगे, यश - लिप्सा आदि सब बिलकुल प्रासंगिक समस्याएँ हैं।

'ग़बन ' (1932) में प्रेमचन्द ने मुख्यतः स्त्रियों की आडंबर प्रियता से उत्पन्न समस्याओं की ओर संकेत किया है। आभूषण के प्रति जान से आधिक प्रेम करने वाली स्त्रियाँ आज भी विद्यमाान हैं। उपन्यास की नायिका जालपा को गहने ही सबसे अधिक प्रिय हैं। उसका विवाह रमानाथ से होता है। पत्नी की आभूषण प्रियता से जुडकर कई समस्यायें पैदा होती हैं। कार्यालय के पैसे लेकर घर ले रखता है। गबन का आरोप होना फिर रमानाथ का वहाँ से कलकत्ता भाग जाना, चाय की दूकान खोलना, पुलिस के पकडने पर झूठी गवाही देना पडना, जोहरा नामक वेश्या के साथ रहना पडना, जालपा को सारी बातें जोहरा द्वारा कहना, जज के सामनें सारी सच्चाइयाँ बता देना, सबका रिहा हो जाना, बाद में सुखी ग्राम्य जीवन बिताना, आदर्श गाँव का निर्माण आदि कथा के मुख्य बिंदु हैं।

मध्यवर्ग का यथार्थ जीवन 'गबन ' में मिलता है। साथ ही पुलिस के कारनामों का पर्दाफाश भी पूरा का पूरा इसमें मिलता है। स्त्रियों के अत्यधिक आभूषण प्रेम तथा पुरुषों की मिथ्या वैभव प्रदर्शन की कुप्रवृत्ति से संयोग से जिस अनर्थकारी परिणाम की सृष्टि होती है उसकी मार्मिक कथा इसमें मिलती है। अफसरों की घूसखोरी की आदत पर भी प्रकाश डाला है। हमारी झूठी संस्कृति, फटीचर बाबू वर्ग के लोगों का आडंबर, प्रेम का आर्थिक आधार, देश की मानसिक गुलामी भी इस उपन्यास की विशेषताएँ हैं।

प्रेमचन्द का 'कर्मभूमि ' (1932) एक प्रकार से राजनीतिक उपन्यास है। हमारे राष्ट्र के निर्माण में दलितों, गरीब किसानों और मज़दूरों की दुरवस्था के सुधार का प्रश्न कितना महत्वपूर्ण है, इस जटिल प्रश्न का उत्तर हम यहाँ खोज सकते हैं। अमरकांत का पुत्र है समरकांत। सपरकांत बडा व्यापारी है। अमरकांत का सुखदा से शादी होना, उसका राजनीतिक - सामाजिक कार्यों में भाग लेना, मुनिसिपैलिटि का सदस्य बनना, चमारों के गाँव में सुधार का काम करना, पाठशाला खुलवाना, अछूत समस्या, संघर्ष, गिरफ्तारी, अंत में सबकी रिहाई, माफी माँगना सरकार का जनता के सामने झुकना, न्याय की विजय आदि उपन्यास के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं।

उपन्यास में कृषक आन्दोलन, सरकारी कर्मचारियों की स्वार्थता, शहर एवं गाँव की समस्यायें आदि की मिलता हैं। शिक्षा संस्थाओं की अर्थ व्यवसाय नीति, धनिक वर्ग की अर्थ लोलुपता, ज़मीन्दारों की शोषण प्रवृत्ति, कृषकों की दयनीय स्थिति, आदि ज्वलंत समस्याओं का

वर्णन की इसमें मिलता है।

'गोदान' (1936) प्रेमचन्द का अतिम पूर्ण उपन्यास है। इसमें मुख्य रूप से किसानों की समस्याओं का वर्णन है। एक प्रकार से भारतीय किसानों का दर्दनाक महाकाव्य है गोदान। इसमें अनेक परिवारों की कथा है, जो एक विराट सामाजिक परिवेश का निर्माण करती है।

होरी की मुख्य कथा इसमें है। वह एक मामूली किसान है। ज़मीन्दार, महाजन, पुरोहित, पटवारी सब उसका शोषण करता रहता। जीवन भर एक गाय को खरीदने की लालसा लिये रहने पर भी वह कभी पूर्ण नहीं होती है। ऋण के चक्रव्यूह में वह जकड जाता है। होरी के दुखों का कोई अंत नहीं। पत्नी धनिया बेटा गोबर भी अपनी असलियत के साथ उपन्यास में प्रस्तुत हैं। साथ ही गरीबों के खून चुसनेवाले ज़मीन्दारों व महाजनों की लंबी कतार भी 'गोदान' में प्रेमचन्द ने प्रस्तुत की है।

किसानों की आर्थिक विषयता, आशिक्षा, धर्मभीरुता, झूठी मर्यादा, नौकरशाही तथा पुलिस का शोषण आदि अनेक समस्यायें 'गोदान' में मिलती हैं। असल में 'गोदान' किसानों की विजयगाथा नहीं, परवशता एवं पराजय की महान विलाप गाथा है। मरने के बाद का पंडितों को गाय दान में देने को कहने से स्पष्ट होता है कि मरने के बाद भी होरी के शोषण का कोई अंत नहीं। होरी की नियति वास्तव में भारत के हरेक साधारण किसान की नियति है। भारतीय किसानों के अप्रिय सत्यों को प्रेमचन्द ने वाणी दी है। किसानों की अपूर्ण आकांक्षाओं की कहानी है गोदान।

संक्षेप में कहें तो प्रेमचन्द के सभी उपन्यास आज भी प्रासंगिक है। उसकी समस्याएँ जितनी पुरानी हैं, उससे अधिक वर्तमान भी हैं। वास्तव में प्रेमचन्द की रचनायें हिन्दुस्तान के साधारण मनुष्य का प्रतिबिंब है। सामान्य आदमी की विशिष्ट कथा कहने में विशेष क्षमता प्रेमचन्द को प्राप्त है। उनके अधिकांश उपन्यासों में यथार्थ और आदर्श दोनों का चित्रण मिलता है। कभी हम आदर्शपरक परिणाम रचनाओं में देखते हैं। 'गोदान' का अंत यथार्थपरक ही है। वास्तव में प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नयी राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं। विराट मानव - संस्कृति की धारा में भारतीय जन - संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया उसके प्रमाण प्रेमचन्द के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकड़ों कहानियाँ हैं।

6 - गोदान का कथानक

'गोदान' में अनेक परिवारों की कथा है, जो मिलकर एक विराट् एवं सामाजिक परिवेश का निर्माण करते हैं। होरी का परिवार इसमें सर्वप्रमुख है। वह बेलारी गाँव का किसान है, जहाँ के ज़मीन्दार रायसाहब अमरपालसिंह है। होरी रायसाहब के यहाँ अक्सर जाता है और उनका मुँह लगा है। वह उनके द्वारा आयोजित रामलीला आदि में भी प्रमुख भाग लेता है। कथानक का प्रारंभ होरी की गाय पालने की इच्छा से होता है। वह रायसाहब के यहाँ मिलने जाता है कि मार्ग में भोला को अपनी गाय लिये आते देखकर आत्म - विभोर हो जाता है। भोला दूसरे गाँव का किसान था और बूढा हो चला था, फिर भी दूसरा विवाह करने की लालसा मन में पाले था। भोला के सामने भूसा प्रचुर मात्रा में था। उसने तीन खाँचे भूसा भोला को दे दिया और यही नहीं; वह खुद अपने बेटे गोबर के साथ एक - एक खाँचा उठाकर भोला के यहाँ पहूँचने भी जाता है। वहाँ गोबर की भेंट भोला की एकमात्र विधवा पुत्री झुनियासे हो जाती है और पहली दृष्टि में दोनों में आकर्षण पैदा ही जाता है। दूसरे दिन जब गोबर भोला के चहाँ से गाय लाने जाता है तो झुनिया उसे आधे रास्ते तक छोडने आती है और दोनों में प्रेम हो जाता है।

होरी के द्वार पर गाय बँधी देख गाँववाले आश्चर्य में रह गए और उसे बधाई देने आए। होरी की प्रसन्नता का तो कोई वारपार ही नहीं था, पर इस अवसर पर अपने दोनों भाई हीरा और शोभा को न देखकर उसे दुःख होता है। वह हीरा के यहाँ उसे मनाने जाता है तो हीरा का वाक्य सुनकर आश्चार्य में पडता जाता है। हीरा भोला से कह रहा था, ईमानी का धन जैसे आता है, वैसे ही जाता है। भगवान चाहेंगे तो बहुत दिन गाय घर में न रहेगी हीरा का खयाल था कि उसके बडे भाई ने काट - कपट कर धन इकट्ठा कर लिया और तब हम दोनों भाइयों को निकाल दिया। होरी का सीधा - सादा मन काँप जाता है और वह चुपचाप भोला की गाय वापस कर देने का निश्चय कर लेता है, पर धनिया लड - झगड कर गाय को नहीं जाने देती। द्वार पर गाय का बधी होना अब उसके लिए मान - सम्मान का प्रश्न बन गया था और किसी भी रूप में उसे खोना नहीं चाहती। हीरा के मन में आग तो लगी हुई थी। वह होरी के कौडे में आग लेने के बहाने आकर गाय को ज़हर दे देता है। होरी ने उसे गाय के पास खडे देखा था, पर उसका निष्कपट मन अपने भाई पर सन्देह न कर सका। पर धनिया भला कैसे चुप रह सकती थी। हीरा घर से भाग गया था। सारा गाँव इकट्ठा था। होरी भाई को बचाने के लिए भीड के सामने गोबर के सिर पर हाथ रखकर कसम खा जाता है कि मैं ने हीरा के पास खडा नहीं देखा था। पर हीरा के भाग जाने से लोगों के मन में संदेह उत्पन्न हो गया था। थानेदार साहब भी मौके का लाभ उठाने के लिए आ पहूँचे और हीरा के घर की तलाशी लेने को उद्यत हो गए। होरी इसे कुल का अपमान समझता था और वह रिश्वत देने के लिए तैयार हो गया। पटेश्वरी ने झट तीस रुपये उधार देदिए। धनिया यह सब देख रही थी। उसने झपट्टा मारकर होरी के हाथ से रुपये छीन लिए। थानेदार धनिया का रौद्र रूप देखकर गाँव के मुखिया लोगों को ही डरा - धमकाकर चलता बना।

होरी के मन में दया थी। फसल के दिन आने पर उसने हीरा के खेत में भी रोपाई कर दी। धनिया का क्रोध अब शांत हो चुका था, इसलिए हीरा के खेत में होरी को देखकर भी कुछ न कहती, बल्कि अब उसे पुनिया पर दया भी आने लगी थी। उधर झुनिया गर्भवती हो गयी। गोबर उसे अपने घर पहूँचा कर सामाजिक भय के कारण भाग गया। धनिया ने पहले तो डाँट दिया, पर स्थिति का ख्याल करके चुप रही और झुनिया को घर में शरण देकर होरी मुसीबत में पड जाता है। गाँव के बाले उसका बहिष्कार कर गाँववालों के भात देने का प्रस्ताव रखा। पंचों ने मिल कर होरी पर सौ रुपए नकद और तीस मन अनाज डांड लगा दिया। होरी अपनी सरलता में यह कठोर अन्याय भी सहन कर लेता है। उधर भोला अब अपनी गाय के ऊपर कसूल करने आता है। झुनिया के शरण देने से वह समझता था कि मेरी नाक कट गई है। उसका कहना था कि यदि होरी झुनिया को घर से निकाल दे तो वह गाय का मूल्य छोड देगा। इस पर धानिया क्रोध में तमककर कहती है झुनिया हमारी जान के साथ है। तुम गाय की कीमत पूरी करने के लिए बैलों को खोल ले जाना चाहते हो, तो ले जाओ, हमें इसकी चिंता नहीं, जिसे हमने दयाभाव से प्रेरित होकर अपने घर में शरण दी है उसे अब किसी भी शर्त पर घर से बाहर नहीं धकेल सकते। हारकर भोला होरी के दोनों बैल खोल ले जाता है।

दोनों बैलों के चले जाने से होरी मानों पंगु हो जाता है। अब वह किसान से एक प्रकार से मज़दूर बन जाता है और उसे दूसरों के खेतों पर काम करना पडता है। धनिया, रूपा तथा सोना भी अब काम करने पर विवश हो गई थीं। आर्थिक विपन्नता अब इतनी बढ जाती है कि उसे मातादीन के आधे - साझे में अपने खेत में बुआई करनी पडती है। गोबर इस बीच शहर से वापस आता है और अपने पिता पर होनेवाले अत्याचारों को सुनकर क्रोध में आग - बबूला हो जाता है।

उसने झिंगुरी सिंह को अपमानित किया और मातादीन का मज़ाक उडाया वह भोला से भी मिलने गया और अपना रो आब दिखाकर अपने दोनों बैल वापस ले आया, पर बाप - बेटों में अधिक न बन सकी और गोबर झुनिया को लेकर वापस चला गया।

उधर भोला ने नोहरी से दूसरा विवाह कर लिया, पर सुखी न रह सका उसके दोनों पुत्रों - कामता और जंगी ने उसे घर से निकाल दिया। नोखेराम ने उसे तीस रूपया महीना और सेर भर अनाज पर नौकर रख लिया। नोहरी बडी तेज़ औरत थी और मर्दों को अपनी ऊँगली पर नचाने की कला जानती थी। धीरे - धीरे वह सारे गाँव पर शासन करने लगी। भोला की गति बडी विचित्र गो गई। वह न तो नोहरी को छोडकर जा सकता था और न साथ ही रह सकता था। नोहरी उसकी परवाह भी नहीं करती थी, उलटे उसकी आड में गुलछर्रे उडाने लगी। वह समय पडने पर और यश लूटने के लिए सोना के विवाह के लिए दो सौ रुपये कर्जा भी दे देती है। उसकी शेखी यहाँ तक बढ जाती है कि वह भोला को जूते से पीटने भी लगती है। भोला प्रायः उसकी शिकायत लेकर होरी के पास आता है। होरी ने कई बार उसे राय दी कि या तो गांव में ही वह अलग मकान लेकर रहे या अपने बडे लडके कामता के पास चला जाए, पर भोला इनमें से एक काम भी न कर सका। चला जाए, पर भोला इनमें सेएक काम भी न कर सका।

दातादीन का पुत्र मातादीन सिलिया चमारिन को रखैल की तरह रखे हुए था। एक दिन सिलिया के जातिवाले आते हैं और मातादीन को पकडकर उसके मुँह में हड्डी डाल देते हैं। इससे बात बढ जाती है। मातादीन सिलिया को गलियाँ देता है उतौर उसे निकाल देता है। सिलिया का प्रेम मातादीन के प्रति सच्चा होता है, वह अपने घर लौट कर नहीं जाती। होरी उसे भी शरण देता है। एक दिन मातादीन को मलेरिया हो जाता है और वह समझता है कि एक निरपराध नारी को दंड देने के कारण ही उसे यह दण्ड भोगना पडता है। वह होरी के मार्फत कभी कभी सिलिया के पास रुपया भिजवा दिया जाता है और जब सिलिया उसके पुत्र को जन्म देती है, तो वह फूला नहीं समाता। अचानक ही एक दिन सिलिया का बच्चा मर जाता है। मातादीन के मन में सत्य ज्योति प्रज्ज्वलित हो जाती है और वह जातीय गौरव और मिथ्याभिमान छोडकर बच्चे की लाश को दोनों हाथों में उठाकर उसे प्रवाहित कर आता है। अब उसे अपने वास्तविक कर्तव्य की याद आती है और वह सिलिया को अपना लेता है। सिलिया को और चाहिए भी क्या था। उसका जीवन टूटते - टूटते जैसे बन जाता है।

गाँव में कंकड की खदाई हो रही थी। होरी की दशा इतनी गिर चुकी थी कि अच्छा स्वास्थ्य न होने के बावजूद वह आठ आने रोज़ पर कंकड की खुदाई करने लगता है। इन्हीं दिनों हीरा आकर अपने बडे भाई से क्षमा मांगता है। इस क्षण होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ मानों उसके चरणों पर लोट रही थीं, कौन कहता है जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण है? इन्हीं हारों में उसकी विजय है, उसके टूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ हैं। उसकी छाती फूल उठी है, उसके मुख पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान हो गई है। इसी उत्साह में वह और भी परिश्रम से काम करने लगता है, पर काल को कौन जीत पाया है? उसकी मृत्यु हो जाती है। गाँववाले गोदान के लिए कहते हैं। धनिया सुतली बेचकर बीस आने इकट्ठा किये हुए थी। उसे मातादीन को देते हुए कहती है। महाराज, घर में न गाय है, न बाछीया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है और धनिया पछाड खाकर गिर पडती है।

इस आधिकारिक कथा के साथ - साथ रायसाहब, मालती और मेहता की प्रासंगिक कथा भी चलती है। रायसाहब प्रत्येक वर्ष अपने यहाँ रामलीला करवाते हैं। प्रो.मेहता मिस मालती, पत्रकार ओंकारनाथ - बीमा कंपनी के दलाल श्यामबिहारी तंखा, मिर्जा खुर्शेद तथा खन्ना साहब आदि उनके हैं। संपादक ओंकारनाथ शराब न पीते थे और अपने को पक्का सिद्धान्तवादी समझते थे। मालती एक एक हज़ार रुपए इनाम शराब पिलाने का वचन देती है। मालती बातें बनाते हुए ओंकारनाथ से कहती है - आपको यह जानकरआनंद होगा कि देश में अब अपिक अनुयायी पैदा हो गए हैं, जो आपके देहात - सुधार आन्दोलन में आपका संगठित रूप से किया जाए और एक देहात - सुधार संघ स्थापित किया जाए और आपको उसका सभापति नियुक्त किया जाए। संपादक ओंकारनाथ कृतज्ञता से फूल जाते हैं और औपचारिकतावश यह पद किसी प्रभावशाली व्यक्ति को दिये जाने की अपील करते हैं, पर मालती उन्हीं के लिए ज़िद करते हुए कहती है। ओंकरनाथ भावावेश में अपना विवेक खो बैठते हैं। इस प्रकार मालती की चाल सफल होती है और ओंकारनाथ शराब पीकर अपनी सिद्धान्तवादिता की पोल स्वयं ही खोलते है।

मालती मेहता की ओर अनुरक्त होती है, पर मेहता स्पष्टतः कहता है 'तुम सब कुछ कर सकती है, बुद्धिमति हो, चतुर हो प्रतिभावन हो, दयालु हो, चंचल हो, स्वाभिमानि हो, त्याग कर सकती हो, लेकिन प्रेम नहीं कर सकती हो'। प्राय इस मित्र मंडली में ऐसे क्षण आते हैं, जब लोगों को लगता है कि मेहता साहब बदल गये हैं और अब मालती से विवाह करने को प्रस्तुत हो गए हैं। लेकिन मेहता ऐसा सोचता नहीं। खन्ना साहब मालती के जरा के साथ भर के लिए अपने पारिवारिक जीवन को विषमय बनाये हुए थे और गोविन्दी अपने भाग्य पर रोती थी। मेहता ने मालती को समझाया कि वह खन्ना के साथ न घूमे, पर मालती को अनौपचारिकता स्वीकार न थी। गोविन्दी का कहना था कि - मेरी दृष्टि में वह वेश्याओं से भी गई - बीती है, क्योंकि वह पर्द की आड में शिकार खेलती है। इस पर उत्तेजित होकर खन्ना साहब गोविन्दी को तीन - चार तमाचे लगा देते हैं। अपमानित होकर गोविन्दी अपने बच्चे को लेकर घर से निकल पडती है। रास्ते में उसे मेहता साहब मिल जाते है और उनके कारण पूछने पर वह कहती है 'अब वह घर मेरा नहीं रहा, जहाँ धिक्कार और अपमान मिलें, उसे मैं अपना घर नहीं कह सकती'? मेहता उससे कहता है कि वह उसका घर है और वहाँ अपमान न मिलेगा। गोविन्दी कहती है, "मैं केवल माता ही तो नहीं नारी भी तो हूँ"।

इस पर मेहता कहता है कि आप खन्ना की बात पर ध्यान न दे। जल्दी ही वह दिन आएगा, जबकि वे आपको इष्टदेवी मानने लगेंगे। इस प्रकार मेहता गोविन्दी और खन्ना के घर को टूटने से बचा लेता है। अचानक एक दिन खन्ना साहब की मिल में आग लग जाती है। खन्ना के तो हाथ के तोते उड जाते हैं, पर गोविन्दी उसे सांत्वना देती है। गोविन्दी की सांत्वना से खन्ना में नया विश्वास और आत्मबल जागता है और मिल को थोडे ही दिनों में फिर से खडा कर लिया जाता है। अब दोनों सहयोगी भावना लेकर आगे बढते हैं।

'गोदान' के कथानक में इस प्रकार एक पूरा युग ही समा गया है। मुंशी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के लिए जीवन का एक विशाल चित्रपट बुना था। 'गोदान' में वह चित्रपर अपनी पूरी यथार्थता के साथ प्रतिविम्बित होता है। इसमें प्रेमचन्द ने दोनों वर्गों - पूँजीवादी एवं शोषित - का पूर्ण यथार्थता के साथ चित्रण किया है। उसमें बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के जीवन का रूप अपनी पूरी समग्रता के साथ उभरता है और गोदान भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य बन जाता है।

7 - गोदान में कृषक जीवन की समस्याएँ

प्रेमचन्द का जीवन काल ऐसी परिस्थितियों से बीता था, जब अंग्रेज़ों की स्वार्थपूर्ण आर्थिक निति के कारण भारतीय अर्थ - व्यवस्था का संतुलन नष्ट हो गया था। उस समय भारतीय अर्थ - व्यवस्था का आधारस्तंभ कृषि रही है। अंग्रेज़ों द्वारा कृषि पर निरंतर बोझ बढ़ता गया। फलस्वरूप भारतीय कृषक की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी कि कृषक आर्थिक अभावों के बीच जीवन व्यतीत करने केलिए बाध्य था।

परिस्थितियों के दबाव में पडकर कृषक की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी। आर्थिक दुर्दशा के कारण कई समस्याएँ उनके बीच उत्पन्न हुई। प्रेमचन्द ने ग्रामीण अर्थ - व्यवस्था का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया। किसान की आर्थिक दुर्दशा में सुधार करने के उद्देश्य से उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में भारतीय कृषक की आर्थिक दशा का विशद चित्र अंकित करते हुए उन कारणों पर भी प्रकाश डाला है जिन्होंने किसान को इस दुर्दशा में पहूँचा दिया है। उनके प्रायः सब उपन्यासों में कृषक वर्ग की दयनीयता का चित्रण हुआ है। सच तो यह है कि उन्होंने कृषक जीवन की समस्याओं का क्रमिक अध्ययन अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। 'गोदान' इस अध्ययन की चरम परिणति है।

'गोदान' के होरी के जीवन पर दृष्टि डालें तो कृषक जीवन के अभाव, विवशता एवं दयनीय दशा का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है। कृषकों सरलता और निरीहता भी उनकी दुर्दशा का एक कारण है। होरी एक निरीह और विवश किसान है। जीवन में कोई भी विपत्ति आयें तो उसे वह सिर झुकाकर स्वीकार कर लेता है। विपत्तियों से संघर्ष करने की शक्ति उनमें है ही नहीं। इस कारण से ही जीवन के संघर्ष में वह बुरी तरह हार जाता है और उसकी दशा अत्यंत दयनीय हो जाती है।

'गोदान' कृषक जीवन की करुणा को चित्रित करनेवाला इतना जीवंत उपन्यास है कि कृषक जीवन की सभी संभाव्य समस्यायें अपने समाधान केलिए यहाँ आकुल होती हैं। कृषक जीवन की तत्कालीन विषमताओं और विसंगतियों की कार्य - कारण श्रृंखला का सार्थक चित्रण प्रेमचन्द ने यहाँ किया है। किसान का ऐसा विश्वास था कि वह शोषक द्वारा चूसा जा रहा है। तो भी भाग्य और भगवान के भरी से ही अपनी ज़िन्दगी खेप देना चाहता है।

प्रेमचन्द ग्रामीण जीवन के चितेरे हैं। इसलिए ही ग्रामीण संस्कृति और जनजीवन का स्पंदन उनके उपन्यासों में देख पाते हैं। गाँववाले अधिकतार किसान होने के कारण किसान से प्रेमचन्द का निकट संबंध है। किसानों और मज़दूरों की जीत रूसी क्रांति में हुई। इससे प्रेरित होकर उन्होंने 'प्रेमाश्रम' में कृषक जीवन को आधार बताया। आदर्श के परिवेश के साथ इस उपन्यास में इनका चित्रण किया है। लेकिन 'गोदान' में एक परिवार को केन्द्र में रखकर कृषक जीवन का असली चित्रण उन्होंने किया। 'गोदान' में एक सम्मिलित कुटुम्ब की महत्ता उन्होंने स्वीकार किया। मध्यवर्ग तथा बडे - बडे ज़मीन्दारों की तुलन में कृषकीय जीवन बिलकुल भिन्न होता है। कृषि पर परिवार के संयोग के बिना हो नहीं सकती। इसके अतिरिक्त समय कुसमय की वर्ष का भी कृषि पर बुरा प्रभाव पडता है। अतः किसानों के सामने खेती - संबंधी कई उलझनें होती हैं। होरी इन समस्त उलझनों से परिचित है।

आर्थिक विषमता के कारण किसान दरिद्र, दीन हीन, असश्य, अपढ और शोषित बना हुआ है। समाज में ज़मीन्दारी ही नहीं कई प्रकार की शोषक शाक्तियाँ उसके अस्तित्व को निगल नहीं रहीं, अपितु अपने पोषण का साधन बनाकर उसे पीढ़ीतर पीढ़ी इसी दरिद्र अवस्था में रखना चाह रही है। ज़मीन्दार

तो एक ही है महाजन कई हैं। वे सभी प्रकार के शोषणों द्वारा लोगों को चूसते रहते हैं। प्रेमचन्द पाठक के सामने स्पष्ट करना चाहता हैं कि सारी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था बदलने से ही यह स्थिति सुधार कर सकते हैं। ज़मान्दारी पद्धति का अंत करके भूमि का उचित बँटवारा करके, औधोगीकरण करके भूमि से अत्यधिक भार कम करना होगा और इसी से आर्थिक विषमता मिटानी होगी।

होरी अपने भाग्यवादिता और धर्मांधता के कारण से ही शोषक रायसाहब के प्रति श्रद्दा और भक्ति से विनीत रहता है। उसी का पुत्र गोबर पिता की धर्मांधता को उसकी मूर्खता प्रमाणित करता है। नयी पीढ़ी के समर्थक होने के कारण पिता के आचार का तीव्र विरोध वह करता है। वह कहता है - "यह तुम रोज़ - रोज़ मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पडती है, नज़र - नज़राना सब तो हमसे भराया जाता है फिर किसी भी क्यों सलामरी करो"?

इसका उत्तर होरी ने यों दिया है - "बडे आदमियों की हाँ में हाँ मिलाने में कुछ न कुछ आनंद तो मिलता ही है"। गोबर के बहुत समझाने पर भी वह भाग्यवादी बना रहता है - उन्होंने पूर्वजन्म में करनेवाले कर्म के अनुसार आनंद मिलेगा ऐसा विश्वास कर बैठा है।

'गोदान' असल में किसानों की अपूर्ण रहनेवाली आकांक्ष की कहानी है। गाय का मालिक बनना कृषकोचित अभिलाषा है। किसान के मन में कुछ कामनायें होती हैं और ये कमनाएँ तानाशाही के कारण टूट जाती है। 'गोदान' एक किसान के सपनों को जन्म से ही कुचल देनेवाली कहानी है। यह भले ही मोह की कहानी नहीं, मोहमंग की कहानी है। इसलिए रणवीर रांगल ने कहा - "गोदान कृषक जीवन के करुणार्द कहानी की समाजिक अभिव्यक्ति का अमृतकुंभ है"।

विशेष समय पर ही किसानों को काम मिलेगा। काम न मिलें तो बहुत कठिनाइयाँ होती हैं। कभी - कभी हानि भी उठानी पडती है। खेती पूर्णतया बैल पर ही निर्भर होती है। बैलों के न रहने पर किसान नितांत असहाय हो जाता है। होरी से अपनी गाय के रुपये न मिलने पर भोला उसके बैल मोल ले जाता है। ऐसी स्थिति में होरी और उसका पूरा परिवार दूसरों को खेतों में मज़दूरी करने को विवश हो जाता है। बैलों के बिना खेती कैसी होगी, होरी को दिन - रात यही चिंता लगी रहती है। होरी सोचता है कि कहीं से कुछ पैसे मिलें तो बैलों की नयी जोड़ी खरीद लें। अंत में ऊख के रूपयों से बैल खरीदना चाहता है। झींगुरीसिंह और नोखेराम ने यह पैसा हड़प लिया और बैलों की इच्छा अधूरी रह गयी।

पारस्परिक ईर्ष्या - द्वेष किसानों की दूर्दशा का कारण है। भूमि पर बोझ बढ़ता जाता है। और चाहने पर भी किसान को भूमि नहीं मिलती। ज़मीन्दार ने रोज़ लगान बढ़ा दिया है। इसलिए किसान अपने ही साथी की विपत्ति का लाभ उठाने को तैयार हो जाता है।

किसान का कर्ज 'गोदान' की केन्द्रीय समस्या है। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने ऋण की यंत्रणा में तड़पनेवाले किसान की जीवन - व्यथा का बडा ही मार्मिक आकलन किया है। शोषण की यह सारी पीड़ायें किसान होरी पर इसलिए झेलनी पडती है कि वह अव्यंत धर्मभीरू है। भारतीय किसान रूढियों और परंपरा को झटक नहीं पाता है। फलतः वह दारिद्र्य के चंगुल से भी ऊपर नहीं उठ पाता। कृषक होरी अपनी बेटी रूपा का विवाह सुयोग्य वर के साथ इसलिए नहीं कर पाता है कि तह निर्धन है। इसलिए दयादीन जैसे स्वार्थिनी, कृपा का अवलंबन उन्हें ग्रहण करना पडा। ऐसा कहा जा सकता है कि कर्ज के वश में पड़कर वे अपने जीवन की बुनियादी ज़रूरतें नहीं पूरा कर पाते। यही किसान परिवार की बहुत बडी त्रासदी है।

'गोदान' में दो प्रकार के शोषण होते हैं - आर्थिक शोषण और वैचारिक शोषण। अर्थात् 'गोदान' में बहुत सारे गिद्ध हैं जो एक साथ होरी नामक छोटी मुर्गी को पकड़ने केलिए उन्हें घेर लेता है। मृत्यु - शैय्या में लेटते समय भी शोषक उन्हें माफी नहीं देंगे। होरी जीवन के अंतिम पल पर भी शोषित होता रहता है। इन्द्रनाथ मदान के शबादों में "पैदा हुआ कष्ट सहता रहा और मर गया - यही होरी का जीवन है"।

प्रेमचन्द 'महाजन' का वह अर्थ देता है - "जिसके बूत्ते पर वह कानून और न्याय के विधान को अपनी मुट्ठियों में बाँधा कृषकों का जीवन दासता में ही अपना प्रसाधन करता चलता "है। इसप्रकार 'गोदान' में कर्षक व महाजन, ज़मीन्दार और किसान इन सबके बीच के संघर्ष को प्रेमचन्द ने इतने विराट् रूप में चित्रित किया है कि 'गोदान' तत्कालीन भारतीय जीवन की प्रतिनिधि रचना का गौरव सहज ही पा लेता है।

हिन्दुस्तान के किसानों की पीडाओं का प्रतिनिधि है होरी। किसान के जीवन में इतना पतन आया कि वह मज़दूर बन जाता है। इसीप्रकार होरी भी मज़दूर बन गया और गोबर भी मज़दूर बनना उचित सपझता है। दिन - रात की मेहनत के बाद भी खेती से पेट केलिए रोटी भी नहीं मिलती और उसकेलिए किसान को महाजन या किसी दूसरे बडे किसान के खेत में मज़दूरी करनी पडती है। ऐसी स्थिति में नयी कृषक पीढ़ी के मन में असंतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। गोबर में यह प्रवृत्ति दिखाई पडती है। 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' से एकदम अलग होकर एक नये रूप में 'गोदान' में कृषक जीवन को ढाला। क्योंकि मूलतः यह किसान के पसीने की कहानी है। एक व्यक्ति की कथा को परिवार की कथा और परिवार की कथा को समाज की कथा के रूप में उन्होंने यहाँ पेश किया। इसलिए परिवारिक टूटन एवं सामाजिक समस्याओं का भी घोर रुप 'गोदान' की विशेषता है।

सक्षेप में कहा जा सकता है कि 'गोदान' में प्रेमचन्द ने भारतीय कृषकों की आर्थिक दुर्दश का चित्र प्रस्तुत करते हुए उन कारणों पर भी प्रकाश डाला है जो कृषकों की इस दुर्दशा केलिए उत्तरदायी है। अतः हम कह सकते हैं कि 'गोदान' गद्य में लिखे गये कृषक जीवन का महाकाव्य ही है।

8. होरी का चरित्र - चित्रण

'होरी का जीवन आदर्शपथ का अनुगामी है'। आदर्श के ऊँचे पथ पर चढ़ते हुए यथार्थ की गहरी खन्दकें उसे संतस्त करती रहती है। होरी भारतीय किसान का प्रतीक प्रतीत होता है। वह कृषक - वर्ग का प्रतिनिधि पात्र तथा उपन्यास का नायक है। यह प्रेमचन्द की अपर चारित्र - सृष्टि है। उसकी संपूर्ण मनोभूमि कृषक की मनोभूमि है। वह जो सोचता - विचारता, करता - धरता है, उन सबके मूल में उसके कृषक - संस्कार ही दिखाई देता है।

आरंभिक पृष्ठों में ही उसके चिर - पुरातन कृषक रूप का दिग्दर्शन हो जाता है। "होरी कदम बढ़ाये चला जाता था। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा - भगवान कहीं गो से बरखा कर दें और डाँडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय ज़रूर लेगा। ..... उसकी खूब सेवा करेगा। ..... गऊ से ही तो द्वार की शोभा है। सबेरे - सबेरे गऊ के दर्शन हो जायँ तो क्या कहना! न जाते कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आयेगा?"

वास्तव में गाय की लालसा भारतीय किसान की जन्म संस्कारगत लालसा है। गऊ को वह माता मानता है। बछडे भी उसका अमूल्यधन होते हैं।

भारतीय किसान युग - युग से सामंतवाद और जमीन्दारी पद्धति का शिकार बना चला आ रहा है। होरी भी इसका शिकावर हुआ है। लेकिन वह अपनी दयनीय दशा को भगवान की मरजी या भाग्य की बात समझकर विद्रोही नहीं होता। फिर भी वह उसकी सेवा करता रहता है। धनिया के विरोध करने पर वह कहता है - "इसी मिलते - जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। जब दूसरों के पाँवों - तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुसल है"। जब गोबर अपने पिता की खुशामदी मनोवृत्ति की आलोचना करता है तो होरी अपने बेटे के विह भाव को दबाता हुआ कहता है - "सलामी करने न जायें, तो रहे कहाँ! भगवान ने गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है"। इसप्रकार भगवान् की लीला में होरी का अटल विश्वास है। जन्म - जन्मांतरवाद, कर्मवाद और भाग्यवाद पर उसकी निष्ठा है।

होरी अपना स्वार्थ गाँठने केलिए दुलारी साहुआइन नोहरी आदि की ठकुर - सुहाती करता है। अपने छोटे - मोटे लोभ - लाभ केलिए वह भले ही थोडा सा छल - कपट कर लेता हो उसका मन कुत्सित नहीं। किसान की क्षुद्र दुर्बलताएँ तथा उच्च संस्कारों की मानवीय सबलताएँ सब होरी में पायी जाती हैं। बह दूसरों से अपने को विशिष्ट समझकर प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब होरी रायसाहब को मिलने जाता है तो दोनों ओर खेतों में काम करनेवाले किसान उसे देखकर राम - राल करते और सम्मान भाव से चिलम पीने का नियंत्रण देते थे, ... उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान -लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सुखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर देती थी।

किसान धर्मभीरु और समाज - बिरादरी - भीरु होता है। छर्म के ब्राहमणी रूप पर उसका विश्वास होता है। जाति - पाँति और छुआछूत को वह ग्रहण किये रखता है। होरी इसी परंपरागत संस्कार के आश्रय, ब्राह्मण पातादीन को विशिष्ट मानता है। ईश्वर का रूप्र रूप उसे हरदत इराता रहता है। जब गोबर दातादीन को एक रूपया सैकडों ब्याज के हिसाब से रूपये देना चाहता है, तो होरी इसे नीति के विरुद्ध समझकर कहता है - "हमें नीति हाथ से नहीं छोडनी चाहिए। जिस दर पर रूपया लिया है, वही देना चाहिए। और फिर ब्राह्मण के रूपये"। जब सिलिया का पिता हरखू और भाई मातादीन को पकड़कर उसके मुँह में हड्डी छुआते हैं - तो होरी ब्राहम्ण के प्रति इस अन्याय को न सहकर कहता है, अच्छा, अव बहुत हुआ हरखू! भला चाहते हो, तो यहाँ से चले जाओ।

चों और बिरादरी पर उसका अडिग विश्वास होता है। होरी अपनी 'मरजाद' को मानता है। उस मर्यादा का पालन उसके लिये बहुत आवश्यक है। अपने बाप दादा के दिये मकान - खेतों से उसका मोह होता है। वह खेती करना ही अपनी मरजाद समझता है, मज़ूरी में उसे चाहे जितना अधिक मिले, पर वह अपनी मरजाद छोडना बुरा समझता है वह कुल - मर्यादा का निबाह करना धर्म मानता है। अपनी लडकी सोना के विवाह में दहेज देना उसकी कुल - मर्यादा है। यह किसान होरी धर्म - भीरु है, बिरादरी से डरता है, ईश्वर से डरता है, राजा से डरता है, सरकार हाकिमों से भय खाता है, पुलिस - दारोगा से काँपता है, तलाशी को हक्का समझता है, परंतु वैसे साहसी है।

होरी का सारा जीवन पेट की रोटियों की चिंता में बीतता है। वह लुटता है, मालिक - महाजनों की झिडकियाँ गालियाँ सहता है, घर में कभी बेटे की व्यंग्य - भरी बातें सुनता है, पत्नी की फटकार पाता है। पर सब कुछ सहते हुए भी परिश्रम - पूर्वक कार्य करना उसकी सहज प्रवृत्ति बन गयी है। इतनी कर्मशिलता कृषक की संस्कारगत प्रवृत्ति है, मरना खपना उसके भाग्य में ही बदा है, होरी

मातादीन से कहता भी है - "किसान और किसान के बैल इनको जमराज ही पिंसिन दे तो मिले"। सुख का एक क्षण भी उसकी गृहस्थी में नहीं आया। यही उसके जीवन की त्रासदी है।

अंत में लड़की रूपा के बेमेल ब्याह की चोट, बेटी बेचने का दुख सबसे घातक सिद्ध होता है। इस चोट ने भी उसे अपनी शक्ति से बाहर मजूरी का परिश्रम करने को उत्तेजित किया, जो उसके प्राण लेकर ही रहा।

इस प्रकार होरी एक सीधा - सरल, भोला - भाला, साफ हृदय का किसान है। उसके छोटे से हृदय में मानव - प्रेम की अथाह भाव - धारा है। वात्सल्य से भरा उसका हृदय अपनी संतान ही नहीं, दुनिया सिलिया जैसी निराश्रिताओं केलिए भी उदार बन जाता है। अपने भाइयों पर वह अब भी जान देता है। उसकी कृषक - प्रकृति झगडे सेदूर भगती है। चार बातें सुनकर की चुप रह जाना ही उसके सरल स्वभाव का नियम है। अपनी पत्नी से खीझते झगडते रहने पर भी, वह उसके अटूट प्रेम - बंधन में बंधा हुआ है। वह एक आदर्श ग्रामीण पति है।

होरी में कृषकोचित चारित्रिक विशेषताओं के साथ - साथ व्यक्तिगत विशेषताएँ भी हैं। उसकी आकृति - प्रकृति का रेखा - चित्र, उसकी अतिशय उदार मानवीय भावना, पेट में बात न पचा पाने तथा भोला, धनिया, दुलारी आदि की प्रशंसा करके अपने पक्ष में कर लेने की व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताएँ उसके व्यक्तित्व को सजीवरूप प्रदान करती हैं। डॉ. इन्द्रनाथ मदान का कथन पूर्णरूप से होरी केलिए लागू लगता है - "पैदा हुआ, कष्ट सहता रहा और मर गया, यह होरी का जीवन है"।

9 - गोबर - चरित्र चित्रण

होरी का बेटा गोबरधन नई पीढी का युवक किसान है। अपनी विषम आर्थिक दशा के कारण असंतोष और विद्रोह उसकी नस - नस में व्याप्त हो चुका है। वह साँवला, लम्बा, एकहरा युवक है। अपने पिता की खुशामदी मनोवृत्ति से उसे चिढ है। वह कहता है -

"यह तुम रोज - रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके, तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पडती है, नज़र, नज़राना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो"।

वर्ग - चेतना उसकी बहुत बढी -चढी है। वह होरी के धर्मात्मापन पर व्यंग्य करता है। भोला को मुक्त में भूसा देना उसे अच्छा नहीं लगता। जब होरी बताता है कि भोला गाय दे रहा था, मैं ने संकट में पडे आदमी की गाय लेना अच्छा न समझता, तो वह कहता है -

"तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गति कर रहा है। साफ साफ तो बात है। अस्सी रुपये की गाय है। हमसे बीस रुपये का भूसा ले लें और गाय हमें दे दें। साठ रुपये रह जाएँगे, वह हम धीरे - धीरे दे देंगे"।

गोबर अन्याय को सहन नहीं कर सकता। शहर में रह लेने पर उसका विद्रोह सक्रिय हो जाता है। वह दातादीन को एक रुपए सैकडों के हिसाब से ही ब्याज देना चाहता है। वह होरी को साफ कहता है किसी को एक पैसा मत दो, सब महाजनों से एक रुपया सैकडों ब्याज कराना होगा। वह सब शोषकों की खबर लेता है। सारे गाँव के युवक उसे नेता बना लेते हैं। होली के दिन वह अपने द्वार पर मण्डली जमाता है। रात - भर शोषक महाजनों और ग्राम - स्तंभों की नकलें होती हैं। वह उन पंचों पर दावा करना चाहता है, जिन्होंने उस पर डाँड लगाया था। वह सबके सामने अपनी हे कडी जमाता है। उसकी विद्रोही प्रकृति मज़दूर संघर्ष में भी पीछे नहीं रहती। झुनिया के मना करने पर भी वह आग में कूद पडता है और बुरी तरह घायल होता है।

यौवन जाग जाने पर वह उसके नशे में डूब जाता है। झुनिया को वह जब अपने साथ ले जाता है, तो ताडी पीने लगता है, अपनी यौनक्षुधा को तंग करता है। गर्भ - भार से दबी दूःखी झुनिया की वह उपेक्षा करने लगता है। यहाँ तक कि वह झुनिया के प्रसव के प्रति बेपरवाही करता है।

वह स्वभाव का उद्दण्डी है। अपने अभिमान और उद्दण्डता में वह इतना आगे बढ़ जाता है कि अपने माता - पिता को भी जली - कटी सुनाने लगता है। वह यहाँ तक कहने से भी नहीं झिझकता कि "माँ - बाप भी पैसे के मतलबी हैं। मैं कहाँ - कहाँ तक तुम्हारी करनी भुगतूँ, मेरे भी तो बाल - बच्चे हैं"। उसके मुख से इतनी बढी - चढीबातें कहलवाकर प्रेमचन्दजी ने कुछ आति कर दी है। यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी संगत - सा नहीं लगता। चार पैसे कमाकर वह एक तरह से महाजन बन ही गया था।

चोट लगने के बाद जब झुनिया उसकी खूब सेवा - सुश्रूषा करती है, तब अच्छा होने पर उसकी मानवता जाग उठती है। अब वह झुनिया के प्रति अपने अत्याचारों से पछताता है। उससे क्षमा - याचना करता है। रूपा के विवाह में जब वह दोबारा घर आता है तो अपने माता - पिता के प्रति उसका अत्यंत विनम्र जावहार उसके स्वभाव के परिवर्तन का परिचायक है। अब उसमें गंभीरता आ जाती है। वह सोचने - विचारने लग गया है। जब होरी रूपा के विवाह के अपने अपराध पर उसके सामने फूट पडता है तो वह पिता को सांत्वना ही देता है -

"जिसे पेट की रोटियाँ ही मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और सम्मान सब ढोंग है"। वह अब अपनी ज़िम्मेदारी समझने लगा है।

वह सब महाजनों की किस्ते कराकर स्वयं अदा करने की बात चलाता है। उसने समझ लिया कि "अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा"। वह गाँव की दुर्दशा देखकर अब विशेष दुःखी होता है। उसके चरित्र की सभी रेखाएँ अत्यंत स्वाभाविक एवं सजीव है।

10 - धनिया का चरित्र - चित्रण

होरी की पत्नी धनिया जबान की तीखी किंतु हृदय की अत्यंत कोमल नारी है। घर की अकिंचनता ने उसे तीखा बनाया है। उसकी वाणी सरल, कोमल, प्रेम - विह्वल तथा माधुर्य से आते - प्रोत है। जीवन में उसे सुख कभी न मिला।

अपने विवाहित जीवन के बीस वर्षों से उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर - ब्योत करो, कितना ही पेट तन काटो ..... मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है। ..... उसके तीन लड़के बचपन में ही मर गये। उसका मन आज भी कहता था अगर उनकी दवा दारू होती तो बच जाते, पर वह एक छेले की दवा भी न मंगवा सकी थी। उसकी ही उम्र क्या थी। उन्नीसवाँ ही वर्ष तो था; पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड गयी थीं; सारी देह ढल गयी थी। वह सुंदर गोहुआँ रंग सॉवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिंता ही के कारण तो! कभी तो जीवन का सुख न मिला। ..... जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिले, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों ! इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था ....."

CUP/8413/11/500/SDE — 3

उसका हृदय मातृ - वात्सल्य, पति - प्रेम और मानवीय प्रेम से परिपूर्ण है। उसे अपने बच्चों पर अटूट प्रेम है। जब झुनिया को गोबर घर छोड़ जाता है, तब पहले तो उसका सती नारी त्व क्रोधित हो उठता है, वह होरी से कहती है - " मैं तुमसे कह देती है, मैं उसे अपने घर न रखूँगी। मेरे घर में ऐसी छतीसियों केलिए जगह नहीं है "। लेकिन जब उसे पता चलता है कि झुनिया गर्भवती है तब उसका उदार मातृत्व और नारीत्व जाग उठता है तथा उसे पुत्र - वधू बनाकर रख लेती है। वह जिस उदारता, निर्भयता और स्नेह से निराश्रिता सिलिया चमरिन को आश्रय देती है, वह उसके उदार मातृत्व और नारीत्व का भव्यतम रूप है। वह कहती है - " जगह की कौन कमी है बेटी ! तू चल, मेरे घर रह "।

अपने पति से उसका रोम - रोम प्रेम की अटूट गाँठें बाँधे हैं। पति से खीझने पर भी थोड़ी देर के बाद प्रेम दुगुने वेग से रीझ उठता है - " विपन्नता के इस अथाह - सागर में सोहाग ही वह गुण था, जिसे पकडे हुए वह सागर को पार कर रही थी "।

जब होरी बीमार पडता है, तो वह सारा मान मनमुटाव भूलकर उसकी जी - जान से सेवा करती है। ऐसी पत्नी, ऐसी गृहिणी पाकर होरी अपने को धन्य समझता है। वह गद्‌गद कहता थी है - " सेवा और त्याग की देवी। ज़बान की तेज़ पर मोल जैसा हृदय ! पैसे - पैसे के पीछे प्राण देनेवाली, पर मर्यादा - रक्षा केलिए अपना सर्वस्व हाम कर देने को तैयार "।

वह पतिव्रता भारतीय नारी है। दया, माया, ममता, सेवा, त्याग कर्तव्य और परिश्रम की यह अनगढ़ मूर्ति कितनी भव्य है, कितनी वन्दनीय!

वह परिश्रमी नारी है, खेत - खलिहान में भी पति के बराबर काम करती है। उसका हृदय विद्रोही का है। पंचों द्वारा डाँड लगाये जाने पर उसका विद्रोही हृदय ललकारता है। वह मर्यादा की भी पक्की है। अन्याय और अत्याचार पर आधारित बिरादरी के बंधन और मर्यादा की बातें उसे कदापि मान्य नहीं। सच तो यह है कि जहाँ अन्याय है, अत्याचार है वहीं विद्रोही धनिया है। एक तरह से धनिया होरी की पूर्ति है। अपनी विवशता और बाह्य दुर्बलता के कारण होरी को अन्याय, शोषण, बिरादरी आदि का सामना करना पडता है - यह होरी की अपूर्णता है। धनिया इस समस्त अत्याचार, अन्याय और शोषण का विरोध करती है। साधारण समझ - बूझ थी उसमें पर्याप्त है। अंधविश्वास आदि दुर्बलताएँ उसमें भी हैं।

इसप्रकार धनिया का चरित्र एक कृषक - नारी का वर्गगत सजीव रूप भी है और व्यक्तिगत विशिष्टता से ओत - प्रोत भी। अपनी परिश्रमशीलता, मातृत्व, स्नेह, दया - ममता, असंतोष, अंधविश्वास, सामाजिक - नौतिक विश्वास, जवाब की तेज़ी आदि में वह सोलहों आने अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, किंतु अपनी अतिशय उदारता, अन्याय साहस अपने चंडी रूप में वह विशिष्ट है। उसके परित्र में विद्रोह है, असंतोष है, क्रोध है। उसके दग्ध हृदय से निसृत असंतोष और विद्रोह की ज्वाला तथा ममता का पिघला हुआ मोम दोनों ही स्थान - स्थान पर शब्द - रूप लिये पडे है। ' गोदान ' के आदि से अंत तक धनिया का प्रभावशाली व्यक्तित्व हम देख सकते हैं।

11 - मेहता का चरित्र चित्रण

डा. मेहता यूनिवार्सिटी में दर्शन - शास्त्र का अध्यापक है। उनका चरित्र आदर्शवादी है। "गोरा चिट्टी रंग, स्वास्थ्य की लालिमा गालों में चमकती हुई, नीची अचकन, चुडीदार पाजामा, सुनहरी ऐनक, सौम्यता के देवता से लगते हैं। ..... उनकी मॉसल भुजाएँ, चौडी छाती और मछलीदार जॉघें किसी पुरानी प्रतिमा के सुगठित अंगों की भाँति उनके पुरुषार्थ का परिचय दे रही थीं"। ऐसा आकर्षक व्यक्तित्व है मेहता का। उनकी व्यक्तित्व की विशिष्टता पर मालती एकबारगी मुग्ध हो जाती है।

मेहता की कथनी और करनी एक है। उसे दिखाने और बनावट से घृणा है। मन, वचन और कर्म में संगति है। वह विनोदाप्रिय, फक्कड़ और मस्त है। शिकर में वह बहुत आनंद लेता है। प्रकृति उसकेलिए आनंद और प्रेरणा है। वह स्वयं मालती से कहता है- प्रकृति का स्पर्श होते ही जैसे मुझमें एक नया जीवन आ जाता है। नस - नस में स्फुर्ति दौड़ने लगती है। एक - एक पक्षी, एक - एक पशु मुझे आनंद का निमंत्रण देता हुआ जान पडता है। यह और कहीं नहीं मिलता - संगति के मोहक स्वरों में भी नहीं", दर्शन की ऊँची उडानों में भी नहीं। वह शराब की सेवा करके विनोद में डूब जाता है।

उनका जीवन परोपकार, परसहायता और उदारता का जीवन है। अपने वेतन का अधिकांश वह गरीब विद्यार्थियों, अनाथों और विधवाओं की सहायता में दे देते हैं। अपने बारे में वह इतने लापरवाह है कि पुरानी अचकन से ही काम चलाते आ रहा है। आत्मसेवा से बडे उसकी नज़र में दूसरा अपराध न था।

मेहता सतत् कमशील व्यक्ति है। "डा. मेहता को काम करने का नशा था। आधी रात को सोते थे और घड़ी रात रहे उठ जाते थे। कैसा भी काम हो, उसके लिए वह कहीं न कहीं समय निकाल लेता था। हॉकी खेलना हो या यूनिवर्सिटी डिबेट हो ग्राम्य संगठन हो या किसी शादी का नैवेद्य सभी कामों केलिए उनके पास लगन थी और समय था"। वह कई साल से एक बृहप दर्शन ग्रंथ लिख रहे थे। अपने बगीचे में बैठे वह पौधों पर विद्युत संचार क्रिया की परीक्षा करता था। अंत में उनकी एक रचना को फ्रांस की एकेडमी ने इस शताब्दी की सबसे बडी उत्तम कृति कहकर सम्मानित किया।

मेहता का जीवन - दर्शन महत्वपूर्ण है। वह रूप की उपेक्षा गुणों से आकर्षित होता है। पुरुषो की मंडली में खूब चाहता, पर ज़्यों ही कोई महिला आयी, आपकी जबान बंद हुई। वह नारी स्वच्छन्दता के विरोधी है। नारी का आदर्श वह सेवा, त्याग, स्नेह और कर्तव्य परायणता मानता बै। नारी का कार्यक्षेत्र वह सेवा, त्याग, परोपकार, उदारता आदि में ही स्वीकार करते हैं, व्यर्थ के अन्य झमेलों में नहीं। फैशन और विलास - भावना से उन्हें चिढ़ है। गोविन्दी को वह आदर्श नारी मानता है। दाम्पत्य से बाहर नर - नारी के प्रेम को वह धोखा कहता है।

खुर्शेद को वह स्पष्ट कहता है कि जब तक सारी समाज - व्यवस्था नहीं बदल जायेगी, तब तक केवल कुछ क्षेत्रों में सुधार करने से कुछ न होगा। खन्ना को भी उन्होंने मज़दूरों का वेतन कम न करने का उचित परामर्श दिया। प्रस्तुत कथन में उनके दार्शनिक विचार स्पष्ट है। समाज की दृष्टि से वह विवाहित जीवन को और व्यक्ति की दृष्टि से अविवहित जीवन को श्रेष्ठ मानता है।

मालती जब उसके आदर्श रूप में बदल दिया था तब वह उससे प्रेम करने लगता है। यों मेहता का चरित्र व्यक्ति - वैचित्र्य से पूर्ण है। आदर्श, दर्शन आदि से युक्त मानव है। जीवन के प्रति उसका अपना दृष्टिकोण है। जीवन को पूर्ण बनाना वह मोक्ष समझता है।

12 - जमीन्दार रायसाहब अमरपालसिंह - चरित्र चित्रण

वह 20 वीं शती का ज़मीन्दार है, जो अपने वर्ग की समस्त दुर्बलताओं से परिचित है। उसके चरित्र का विरोधाभास यह है कि एक ओर वह अपने वर्ग और ज़मीन्दारी पद्धति की भरपूर आलोचना करता है, दूसरी ओर उससे बुरी तरह चिपटा हुआ भी। वह आज के बौद्धिक युग का ज़मीन्दार है। वह 'प्रेमाश्रम' के रायकमलानंद का विकसित रूप है। सिद्धान्त रूप में वह पूरा समाजवादी या साम्यवादी है, जो अपने वर्ग और संपूर्ण सामंतीय एवं पूँजीवादी समाज व्यवस्था का विरोध करता है। विचारधारा की दृष्टि से वह पूर्ण प्रगतिवादी है। किंतु उसके मन, वचन और कर्म में भारी भेद है।

वह दिखावे के लिए राष्ट्रवादी बनता है, एक बार जेल भी गया है। इन्हें मगर - मच्छ के आँसू बहाना खूब आता है। अपने आसामी तक के सामने वह अपनी दीन विवशता का रोना रोता है। मेहता की खरी - खरी बातें सुनकर यह 'सभा - चातुर' जमीन्दार अपमान और आघात को धैर्य और उदारता से सहता हुआ अपनी सफाई यों देता है - " ..... अन्य यात्राओं की भाँति विचारों की यात्रा में भी पडाव होते हैं ..... मैं उस वातावरण में पला हूँ, जहाँ राजा ईश्वर है और ज़मीन्दार ईश्वर का मंत्री। मेरे स्वर्गवासी पिता असामियों पर इतना दया करते थे ..... मैं खुद सद्भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड सकता और चाहता हूँ कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोडने के लिए मज़बूर कर दिया जाय इसे आप कायरता कहेंगे, मैं इसे विवशता कहता हूँ "। इस विवशता का रोना रोकर ही वह अपने स्वार्थ अन्याय अत्याचारों में प्रवृत्त रहता है। बेगर, नज़र नज़राना, एजाफा - लगान, जुर्माना आदि सब लेता है।

इस तरह के भाषण से बौद्धिक युग के चतुर ज़मीन्दार का मनोविज्ञान सुस्पष्ट है। वह अपनी विवशता और परिस्थितियों की दासता का ऐसा चित्र पेश करता है बेचारा होरी तो क्या कोई भी विचारवान व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इससे वह समझता है कि रायसाहब बहुत अच्छे आदमी है, जो अपनी दुर्बलताओं को साफ कह देते हैं, परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं, उनकी जान को भी कितने झमेले हैं, न करें तो काम कैसे चले? ओंकारनाथ को भी उन्होंने ऐसी ही विवशता जताकर काबू में किया। उसे सौ ग्राहकों के चन्दे का लोभ देकर चुप किया, पर उसका मानसिक परिवर्तन अपनी परिस्थितियों की विवशता के प्रति सहानुभूति जगाकर ही किया है।

अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही वह सिद्धान्तवादी बना हुआ है, अपनी विवशता जहिर करता है, नेशलिस्ट बनता है और जब देखता है कि जेल जाकर, सरकार का विरोध करके उसे कुछ लाभ नहीं हुआ तो वह सरकार का हामी बन जाता है। अपने बेहरूपिपन से वह राजा सूर्यप्रतापसिंह की अपेक्षा अधिक लोकप्रियता पाकर इलेक्शन जीत लेता है और स्वयं को सरकार का हामी जताकर होमरूल का मेम्बर और मिनिस्टर बन जाता है। वह सोलह आने अवसरवादी है। अपनी प्रतिष्ठा बढाने के लिए ही वह राजा सूर्य प्रतापसिंह की बेटी से अपने बेटे का विवाह कराना चाहता है।

जब बेटा रुद्रपाल उसका कहना न मानता तब वह वात्सल्य वंचित एवं दुःखी होता है। रुद्रपाल मुकदमा जीतकर बडी भारी संपत्ति उससे छीन लेता है। लडकी का अपने पति से संबन्ध विच्छेद हो जाता है। कुल मिलाकर प्रेमचन्द ने उसके जीवन की विडम्बना का सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है। अनेक झमेलों में पडा वह अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा में लगा हुआ है। लेकिन उसे मानसिक शांति न मिलती, संपत्ति भी नष्ट होती जा रही है। वह ह्रसवोन्मुख सामंतवाद का प्रतीक है। उसकी रियासत का क्षय होता जा रहा है। धन के लिए उसे पूँजीपति के आगे हाथ पसारने पड रहे हैं।

वर्गगत प्रवृत्तियाँ तथा जीवन परिस्थितियाँ होते हुए भी रायसाहब के चरित्र में कुछ निजी विशेषताएँ भी हैं। रायसाहब में सहनशीलता गजब की है, जो प्रायः इस वर्ग में कम ही नज़र पडती है। वह अपने लोगों की मनोवृत्ति भोग - विलास से कोसों दूर है। वह विधुर जीवन ही बिताते हैं, दूसरी शादी भी न करके शराब न पीते। वह स्पष्ट कहते हैं -

"इन लोगों (अपने वर्ग के भाई बंधुओं) ने मुझे भोग - विलास में फँसाने के लिए काम के चालें नहीं चलीं और अब तक चलते जाते हैं"।

इस प्रकार उसका चरित्र अत्यंत सजीव तथा स्वाभाविक है। उसके चरित्र में प्रेमचन्द ने जो विरोधाभास प्रस्तुत किया है, वह एक अत्यंत सफल मनोवैज्ञानिक युग सत्य है।

13 - मिस मालती - चरित्र चित्रण

शहरी जीवन के परिचायक नारी पात्र भी 'गोदान' में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। शहरी नारी पात्रों में प्रमुख है मिस मालती। मालती कौल विधवा विवाह रचनेवाले, क्रान्तद्रष्टा प्रेमचन्द की वह औपन्यासिक शील रचना है, जिसमें नई रोशनी की सतरंजी जगमगाहट है और मानवता वादी सेवा परंपरा की आत्मज्योति है।

मालती का चरित्र - चित्रण प्रेमचन्द ने सजीव ढंग से किया है। "मालती शहर से तितली है और भीतर से मधुमक्खी। उनके जीवन में केवल हँसी ही नहीं है, केवल गुड खाकर कोई भी तो जी ही नहीं सकता। वह हँसती है, इसलिए की उसे हंसने के भी दाम मिलते हैं"। चञ्चलता, बुद्धि चातुर्य, आत्माभिमान, नजाकत, स्वार्थपरक आदि उसके स्वभाव की सभी विशेषताएँ और दुर्बलताएँ धनुष यज्ञ प्रसंगों में ही स्पष्ट हो जाती है। विदेशी शिक्षा के प्रभाव ने उसे तितली बनाया। दूसरों की हँसी उडाने, व्यंग्य कसने में वह बहुत तेज़ है। वह क्षण - भर में ही ओंकारनाथ को उल्लू बना डालती है। अपने ह्रस्व - भावों से पुरुषों को बचाना वह खूब जानती है। मिल मालिक खन्ना को भी उसने उसी तरह उल्लू बना रखा है। वह इसलिए चमकती और चाहती रहती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है।

मालती इंग्लैंड से डाकटरी की उच्चपरीक्षा में पास होने के बाद लखनऊ में प्राक्टीस करती है। झिझक और संकोच उसे छू तक नहीं गया है। मेक - आप में वह जितनी प्रवीण है, उतनी ही हाज़िर जवाब में भी। उसका हृदय संकुचित भी इतना है कि यह एक ग्रामीण कलूटी स्त्री के सेवा - भाव को शोक की दृष्टि से देखती है और मेहता को उसके प्रति श्रद्धा का भाव करते देख कर ईर्ष्या से जल उठती है। वह नारी स्वच्छन्दता की कहानी है। आश्चर्य की बात है कि वह एक बार जेल भी हो आई है।

मालती घर का सारा दायित्व आप निभाती है। पिता के रोग से निकम्मा होने के कारण घर का सारा खर्च मालती के ही दम से चलता है। दोनों बहनों की पढाई - लिखाई की भी वही खर्च उठती है, पिता के अनियमित खर्च को बर्दाश्त करती है। वह एक ऐसा आश्रय चाहती है, जो दृढ हो, स्थाई हो। उसका मधु मक्खी मन मेहता के गुणों पर रीझ जाता है। वह जी जान से मेहता को चाहने लनती है। मेहता कि एक - एक गुण को वह अपने हृदय में संचित करना चाहती है।

"मेहता और मालती विशेष परिचत नहीं है, जैसांकि उपन्यासकार की यह टिप्पणी से पता चलता है - मेहता खिल उठे। थोडी देर पहले उन्होंने खुद इसी विचार का प्रतिपादन किया था। उन्हें मालूम हुआ कि इस रमणी में विचार की शक्ति भी है, केवल तितली नहीं संकोच जाता रहा"।

वाचालता और संकोचहीनता मालती में कूट कूट कर भरी हुई है। किसी भी पुरुष का खाका खींच देने में वह विशेष निपुण है उसके वाग्वागों के प्रथम शिकार करती है कि वे तो मुर्दादिल होने चाहिए, अथवा फिलासफर नहीं है। शादी का प्रसंग छिडने पर वह निसंकोच भाव से कह उठती है - "मैं ने प्रतिज्ञा की है, किसी फिलासफर से शादी करूँगी और यह वर्ग शादी के नाम से घबराता है"।

मालती के शील के प्रारंभिक व्यापार नव - युग की प्रेराणाओं से उत्प्रेरित दीखते हैं। वह जहाँ पहूँचती है, वातावरण में रोमानी गन्ध विखरे देती है। खन्ना के सम्पर्क में तो वह हुस्न की परी सी दीखती है। मेहता नवयुग की रमणियों से जितनी ही पनाह माँगते हैं, उतना ही उनके पीछे पड जाती है। उसकी आसक्ति, रूप से अधिक रुपयें में ही निहित है दीखती है। तभी तो वह अफगान के हाथों अपने सतीत्व को खतरे में डालकर भी अपनी फीस की रकम का उत्सर्ग करना नहीं चाहती।

मालती थोडा से प्रोत्साहन देकर पुरुषों को नाच नचाने की कला में बडी निपुण है और बेचारे खन्ना के लिए तो वह एक अबूझ पहेली ही बनी रहती है। मालती की तेजस्विता यदि किसी पुरुष पात्र के समक्ष फीकी पडती है तो वे हैं डाक्टर मेहता। खन्ना, तंखा, आदि के विषय में तो यह भी कहा जा सकता है कि वे विवाहित हैं, " अतः मालती जान बूझकर उनकी ओर नहीं बढती, किंतु मेहता अविवाहित भी है और एक मासिक आयवाले ख्याति - प्राप्त प्राध्यापक भी। संभव यदि मेहता भी उसकी ओर खन्ना की भाँति लार टपकाते तो मालती उनकी भी उपेक्षा कर देती, किन्तु मेहता सभी दृष्टियों में मुनियों जैसा संयम दिखाते हैं, उससे मालती उनकी ओर और भी अधिक आकृष्ट अनुरक्त हो उठती है।

मेहता का दृढ आधार पाने की आशा में उसका चरित्रिक परिवर्तन आरंभ होता है। वह अब सेवा और कर्तव्य का मार्ग अपना लेती है। वह महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला का आयोजन करती है और इसके लिए चन्दा इकट्टा करती है। वह अब मेहता का संकेत पाकर खन्ना की गलतफहमी भी दूर कर देती है और गोविन्दी खन्ना के बीच से बिलकुल हट जाती है।

मालती नारी - स्वातंत्र्य में विश्वास करती है, पर मेहता की आदर्शनारी भावना का आदार करती है। मालती के चरित्र में आत्मालोचन का जो अनुपम गुण है, वह रायसाहब जैसे आडंबर प्रिय पात्रों की तुलना में और भी अधिक भास्वर आकर्षक हो उठता है।

जो मालती कभी खुद अपने जूते भी न पहनती थी, जो खुद कभी बिजली का बटन तक न दबाती थी, वह अब पैदल चलकर गाँवों में सेवा कार्य के लिए जाने लगी, गरीबों का मुक्त इलाज करने लगती है। वह आगे कहती है - " मैं प्रेम को संदेह से ऊपर समझती हूँ । वह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है ..... वह सम्पूर्ण आत्म समर्पण है। उसके तुम परीक्षक बनकर ही नहीं, उपासक बनकर वरदान पा सकते हो "।

मालती मेहता के अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्थित करती है। उसकी सुविधाओं का पूरा ध्यान रखती है; पर मन में कोई व्याकुलता नहीं लाती, सहज भाव से अपना कर्तव्य निभाती है उसके मातृ - वात्सल्य पर मेहता प्यास से मुग्ध हो उठते हैं -

"तब मालती प्यासी थी, अब मेहता प्यास से विकल है "।

मालती दूसरों के कष्टविवरणों से बडे सुख का अनुभव करती है। इससे भोगविलास से ज़्यादा उन्हें सिद्ध होती है।

मालती के चरित्र के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उपन्यास के पूर्वार्द्ध में तो उसके चरित्र में वाचालता, ईर्ष्या, लोभ, चंचलता तथा तितलीपन आदि अवगुण दृष्टिगत होते किंतु मेहता रूपी पारस के संसर्ग से उसके चरित्र में आशातीत सद्गुणों का विकास होता जाता है। उसके व्यक्तित्व की तितली अपना रूपान्तर मधुमक्खी में करती जाती है और परोपकार, निर्धनों की सेवा परदुःख कातरता, मानव कल्याण, तथा प्रेम के उदान्त रूप की प्रतिमा बन जाती है।

उसमें आत्मोलोचन का अनुपम गुण है, जिससे आत्म विन्दा करके वह हमारी दृष्टि में और भी ऊँची उठ जाती है। अतः कहा जा सकता है कि मुंशी प्रेमचन्द की मानसी - सृष्टि मालती जैसी प्रबुद्ध चेता नारियों की भरतोद्धार के लिए नितान्त आवश्यक है। डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निम्न कथन से मालती को पहचानने में सहायता मिल सकती है -

" झोंपडियों से लेकर महलों तक, खोमचवालों से लेकर बैंकों तक, गाँव से लेकर धारा सभाओं तक आपको इतने ही कौशलपूर्ण और प्रामाणिक भाव से कोई न ले जा सकता "।

14 - ' गोदान ' शीर्षक की सार्थकता

किसी रचना का नामकरण अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि कृति का नामकरण प्रमुख घटना या पात्र के साथ मेल नहीं बिठाते तो उसके विषय में भी सामान्य जीवन की भाँती यह व्यंग्योक्तियों की जा सकती है -

" आँखों से अंधे नाम नयन सुख "। अतः उत्कृष्ट कृति के लिए उपयुक्त नामकरण होना चाहिए। साहित्य - जगत में नामकरण की दो प्रणालियाँ होती हैं, एक है साहित्यकार पहले कोई शीर्षक चुन लेते हैं और तदनंतर उसके अनुकूल घटनाओं तथा कथाओं का चयन करते हैं। दूसरा कृति की समाप्ति के बाद उसके अनुकूल शीर्षक चुन लेना। सामान्यतः कृतियों के नामकरण की निम्नलिखित प्रणालियाँ चलती हैं -

1. नायक - नायिका के आधार पर
2. मुख्य घटना के आधार पर
3. केन्द्रीय समस्या के आधार पर
4. कृति के उद्देश्य के आधार पर
5. किसी स्थल विशेष के नाम के आधार पर
6. कृति के, आत्मा के संबन्ध डालनेवाला
7. व्यंग्यात्मक

कृति के नाम का कलात्मक और आकर्षक होना कृति के समान्वित प्रभाव की अभिवृद्धि में सहायक होता है। कृति के आत्मा को आत्मसात करनेवाले सौंदर्य युक्त संक्षिप्त वौचित्र्यपूर्ण सार्थक नाम ज़रूर आकर्षपूर्ण बन जाते हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर ' गोदान ' नामकरण बडा ही सार्थक सिद्ध होता है। उपर्युक्त आवश्यक बातों के आधार पर देखें तो ' गोदान ' इन सबों से भरी हुई एक कविता है। ' गोदान ' का नामकरण भले ही मूल समस्या को दृष्टि में रखकर दिया गया है। ' गोदान ' शब्द संस्कृति के है। इसका आशय यह है कि यदि किसी व्यक्ति से उसकी मरणासन्न स्थिति में गोदान करा दिया जाय तो वह दान में ही हुई गाय उस प्राणी को भयावह वैतरणी नदी से पार उतरने में सहायता पहूँचकर उसके स्वर्ग - गमन के मार्ग को सुगम्य बना देती है। मुंशी प्रेमचन्द ने इस प्रसिद्ध संस्कार के आधार पर उपन्यास का अभिधान रखकर अपने प्रमुख पात्र होरी के जीवन की विडम्बना को दिखाने के उद्देश्य को पूर्ण कर दिया। गाय की लालसा भारतीय किसान की स्वाभाविक लालसा है। गोधन गोरस और गोवश की दृष्टि से समूह पहाड के प्रत्येक ग्रामीण व्यक्ति का जीवन स्वप्न रहा है। ' गोदान ' का होरी भी एक निर्धन

किसान है जो किसी प्रकार एक गाय खरीदने के लिए व्यग्र है। उसकी चिन्ताग्नि में धनिया की इस उक्ति से आहुति मानो पड जाती है -

" तुम जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दशा देख - देखकर तो मैं और भी सूख जाती हूँ कि भगवान यह बुढापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख मांगेगे "?

होरी की चिर प्रतीक्षित लालसा पूरी हो जाती है, किंतु उसके भाग्य में गाय के दूध - दही के सेवन का सुख लिखा ही नहीं हे। बेचारा होरी गाय को उधार लाता है किंतु उसके भाई हीरा के मन में यह ईर्ष्याग्नि धधक उठती है कि इसको बँटवारे के समय होरी द्वारा बेईमानी करके छिपाये रुपयों से खरीदा गया है। धनिया की यह आशंका सत्य ही सिद्ध होती है कि न जाने यह गायरूपी सम्पदा अपने साथ क्या बाधायें लाएँगी?

आर्थिक कठिनाइयों के कारण एक बार वह यह निश्चय करता भी है कि लडकियों के से जाने पर गाय को झिंगुरी सिंह के यहाँ पहूँचा आयेगा, किंतु गाय खोलते हुए वह स्वयं भी भाव विह्वल हो उठता है-

होरी ने काँपते हुए स्वर में कहा - " मेरा तो हाथ नहीं उठता धनिया। गाय का मुँह नहीं देखती? रहने दो, रुपये सूद पर ले लूँगा। भगवान् चाहा तो सबको अदा हो जायेंगे "।

अपने भाई हीरा गाय को देखने के लिए नहीं आया और इसके बारे में होरी ने कुहराम मचाया। इससे हीरा की ईष्याग्नि और बढ जाती है और गाय को माहुर खिला देता है। गाय की मृत्यु हो जाने के कारण होरी के सिर पर व्यर्थ ही अस्सी रुपये का भार और बढ जाता है।

गाय की मृत्यु के बाद भी आर्थक कठिनाईयों के बीच में भी होरी अपनी लालसा को मन ही लेकर मर गया, गोदान कराने की बात कही जाती है। मृत्यु की छाया से ग्रस्त होरी की अधूरी साध का चित्र प्रेमचन्द ने बहुत सुन्दरता से प्रस्तुत किया है। जीवन की अंतिम घटियों में उनके गले से " गोदान करा दो, अब यही समय है " यह वाक्य निकला गया। उसकी मृत्यु के बाद साहूकार क्रूर ब्राह्मण के रूप में उसकी लाश से अपना रुपया माँगने आता है। पं.दातादीन कहता है - " अंतिम समय है, होरी को मुक्ति प्राप्त करने केलिए अपने हाथ से गोदान करने दो "। इस समय धनिया ने आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने लेकर, पति के ठंडे हाथ में रख सामने खडे दातादीन को दे दिये और कहा -

" महाराज घर में न गाय है, न बछिया, नं पैसा, यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है "। और वह पछाड खाकर गिर पडी।

उपन्यास के कलेवर में होरी की गाय लेने की लालसा का आद्यन्त चित्रण मिलने तथा इस कामना को मन में संजोये ही चला बसने पर भी उसके वैतरणी संतरण की दृष्टि से तदर्थ गोदान के रूप में उन्हीं पं. दातादीन को सौंप दिये जाने, जो महाजन के रूप में होरी का जोंक के समान रक्त पीता रहा है। कृति का बडा ही करुण मार्मिक अंत है तथा उपन्यास के नामकरण की दृष्टि से बडा ही व्यंग्यात्मक शीर्षक है। अंत में कहा जा सकता है कि अपनी लालसा की पूर्ति के लिए होरी अपनी जान दे देता है। दूसरी ओर लेखक का उद्देश्य इससे यह बताना भी है कि अनंत संघर्षों के बाद इतनी तुच्छ लालसा भी जिस किसान की अधूरी रह जाती है, उसके जीवन की इससे करुण ट्राजडी और कथा हो सकती है।

इस प्रकार ' गोदान ' नामकरण से लेखक का मूल उद्देश्य, मुख्य कथा का मर्म और उपन्यास की मूल संवेदना स्पष्ट हो जाती है। यह मान अत्यंत उपयुक्त और सार्थक है। इस नामकरणमें अभिधा, लक्षण, व्यंजना नामक तीनों शब्द - शक्तियाँ अपने - अपने प्रतिपाद्य को लेकर इतना अर्थविस्तार पाती है और जीवन की वृत्तियों के स्वाभाविक संश्लेष और विरोध में साहित्य को विषम अलंकार का कौतुक प्रदान करती है।

' गोदान ' उपन्यास के नामकरण में रस सिद्धि तथा शील प्रकाश का बडा ही व्यंग्य मर्म संयोग है। इस उपन्यास का चरम तथा प्रधान लक्ष्य करुण रस का आनंद है। बीज रूप में जो गौ का सपना प्रारंभ हुआ, उसका अंतिम अर्थ असत् का यह द्रव्य कंकाल है, जो सुतली के पैसों के रूप में है।

' गोदान ' नाम, नाम ही नहीं, रूप भी है। उपन्यास के चिर अवसादमय अंत और शील की सरल अनिवार्यताओं के मर्म तथा व्यंग्य की इतनी सफल विभावना भुरिशः प्रशंसनीय है। अतः ' गोदान ' उपन्यास का शीर्षक नामकरण के संदर्भ में चुनौती देता है, आज के नये युग की नयी - सी - नयी संवेदना को।

" हिन्दी साहित्य के लिए यह प्रेमचन्द का भी गोदान सिद्ध हुआ। यह उनकी अंतिम पूर्ण उपन्यास है। यह समाज को दिया गया प्रेमचन्द का अंतिम दान हैं "।

इसलिए इस दृष्टि से भी यह नामकरण बहुत ही उपयुक्त रहा।

15 - ' गोदान ' में शोषण के विविध रूप

' गोदान ' कृषक जीवन का महाकाव्य माना जाता है पर केवल कृषक जीवन के आधार पर इनका मूल्यांकन करना उचित नहीं है। यह मूलतः एक परिवार के परिवेश की कथा है। परिवार की कथा सामाजिक और समाज की कथा राष्ट्र की कथा बन जाती है। ' गोदान ' में कृषक जीवन के अलावा बहुत सारी समस्याएँ होती हैं। शोषण की समस्या उनमें एक है। महाजनी शोषण, ज़मीन्दारी शोषण, धार्मिक शोषण और वर्ग विषमता आदि की मुँह बोलती तस्वीर है ' गोदान '।

' गोदान ' कृषक जीवन की करुण कवलित कहानी होने के कारण करुण परिस्थितियाँ अधिकार शोषण अत्याचार और अन्याय का परिणाम है। अतः भले ही इस उपन्यास में करुणरस की प्रधानता है तो बीभत्स रस की व्याप्ति भी ' गोदान ' की बडी शक्ति है। गरीबों का शोषण करनेवाले, बेघर रहनेवाले, नज़र - नज़राने तथा अपने धार्मिक सामाजिक विनोद के लिए का गरीबों से ज़बरदस्त चन्दा लेने वाले रायसाहब अमरपाल सिंह किसानों पर अत्याचार करनेवाले, नोखेराम जैसे करिन्दे, माँगरू, पं.दातादीन तथा झिंगुरीसिंह जैसे निर्दयी सूदखोर महाजन, पटेश्वरी जैसे स्वार्थ और लोभी पटवारी, रिश्वतखोर अन्यायी पुलीस दारोगा, धर्म की ओर जात - पाँत का भेद रखनेवाले स्वार्थ दातादीन का लम्पट पुत्र मातादीन, मज़दूरों के शोषण करनेवाले बेईमान मिलमालिक खन्ना, ओंकारनाथ जैसे स्वार्थ और दुर्बल प्रकृति पत्रकार आदि अनेक पात्र घृणा के पूर्ण आलंबन है।

सामंती शोषण या ज़मीन्दारी पद्धति द्वारा करनेवाले शोषण में रायसाहब अमरपाल और उनके कारिन्दे आदि आते हैं। अन्यायपूर्व लगान वसूल करके, बेदखल करके असामियों को तंग करनेवाले रायसाहब गोदान के प्रमुख शोषक हैं। वे अपने सामाजिक और धार्मिक संतोष के लिए धनुष्ययज्ञ की तैयारियाँ कराते हैं और अपने असामियों से बेगार ले रहे हैं। रायसाहब नामक ढोंगी ज़मीन्दार कभी - कभी होरी के आगे नीति और धर्म की बातें कर रहाथा, पर एकदम बदल गया।

अपनी झूठी शान रखने के लिए ज़मीन - आसमान को मिलाने में इनको लेशमात्र भी संकोच नहीं है। वह ऐसा व्यक्ति है जो कभी राष्ट्रवादी है तो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए कभी राजभक्त भी बनते हैं। वह गरीबों का खून चूसकर अपने लम्बे - चौडे परोप - जीवि, कुनबे को अन्याय से पालता है और पत्र - पत्रिकाओं का मुँह बन्द रखने के लिए चन्द देता है। वास्तव में यह कितनी घृणा - जनित बातें हैं। राजा सूर्य प्रताप सिंह भी भले ही इस प्रकार का एक व्यक्ति हैं।

कारिन्दा नोखेराम बेईमान और धूर्त के लिए प्रख्यात है। यद्यपि होरी ने सारे लगान चूक दिया तो कारिन्दा हो साल की बाकी निकालकर प्यादा देता है। उनका मत यह है -

" रसीद कभी नहीं दिया है। इसलिए रुपये देने के लिए क्या सबूत है "।

यह सुनकर गोबर गर्म होकर नोखेराम से चिढा -

" यह क्या बात है कारिन्दा साहब। आपके दाता ने साल भर का लगान चुभता कर दिया है अभी दे साल की बाकी निकाल रहा है। यह कैसा गोल माल है? "।

इसके उत्तर में नोखेराम बताते हैं - " इसी गाँव से एक सौ सहादने दिलाकर साबित कर दूँगा कि तुम रसीद नहीं देते "।

कभी - कभी नोखेराम के व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता है कि मन की मैल अंदर न समाकर बाहर जा रही हो।

' गोदान ' में महाजनी शोषण का बडा सुन्दर चित्रण मिलता है जिसके पास चार पैसे हुए वही महाजन बन रहा है। इस उपन्यास में माँगरू शाह, दुलारी, दातादीन, पटेश्वरी, पटवारी आदि महाजन वृन्द होते हैं। पूँजीपति सेठ का एजेन्ट झिंगुरी सिंह एक महाजन है। ये लोग गरीब लोगों और किसानों की कर्ज देते हैं और कर्ज देते समय पाँच हाथ पर रखते हैं और ब्याज की रसम प्रतिदिन बढाती रहती बीस के एक सौ साठ चुकाना पडता है किसान सबकी ऋणी बन जाता है। होरी शोभा से कहता है -

" इस जन्म में तो कोई आशा नहीं है भाई। हम राज नहीं चाहते, भोग - विलास नहीं चाहते। खाली मोटा झोटा पहनना मोटा झोटा खाना और मर्यादा के साथ रहना चाहता है वह भी नहीं सधता "।

एक शोषित पीडित किसान के इन वाक्यों में से उसकी दुर्दशा का कितना सुन्दर चित्रण हमें प्राप्त होता है। भले ही परहीन दरिद्र किसान के आलंबनत्व से करुणरस और शोषक महाजन से बीभत्स रस का कैसा सुंदर समावेश हो रहा है।

प्रेमचन्द ने इन महाजनों की काली करतूत ही नहीं प्रकट की, काली अकृति के भी चित्र दिये हैं जिनसे इनके घिनौना रूप और भी प्रकट हो जाता है। एक उदाहरण देखिए -

" किसान के ऊख मिल में पहूँची तौल शुरू होते ही झिंगुरी सिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिये। हर की ऊख तौलते थे, दाम का कुर्जा लेते थे, खजांजी से रुपये वसूल करते थे। और अपना - अपना काटकर आसामी को दे देते थे। आसामी कितना ही रोये चीखे, किसी की न सुनते थे "।

इन महाजनों के दुष्चरित्र का भी ज़िक्र प्रेमचन्द ने समय - समय पर व्यक्त किया है। ढोंगी पंडित और पुरोहित दातादीन के पुत्र मातादीन दुषचरित्र के उपासक थे। मातादीन झुनिया से मीठी - मीठी बातें करने के लिए किसी न किसी बहाने रोज़ घर आता है। नोखेराम की दरपर्दा व्यभिचार के लिए प्रसिद्ध है।

बैल के लिए तीस रुपये होरी को उधार देनेवाले मातादीन ने बाद में उससे दो सौ माँगता है। गोबर कहता है -

" मझे ठीक याद है, तुम ने वे बैल के लिए तीस रुपये दिये थे, उसके सौ हुए और सौ कि के दो सौ हो गया। इस तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट - लूटकर मज़दूर बना डाला और आप उनकी ज़मीन के मालिक बन बैठ, तीस से दो सौ कुछ हद है "?

यह नहीं यह महाजन भी अपने रुपये के बल पर किसान से बेगार लेता है। हास्ययुक्त घृणा का भव्य के भाव और रूप देखना हो तो होली के अवसर पर गोबर की चौपाल में हुई गिरिधर की नकल पडना काफी है। महाजन का इससे बडा मज़ाक और तो क्या होगा?

पूँजीवाद शोषणका भीषण रूप हमें गोदान में मिलते हैं। शहर के पूँजीपति खन्ना ने महाजनी कोढी खोल रही है। उन्हीं का एजेन्ट झिंगरी सिंह है। ये किसान को उधार देते है और फसल अपने पास मंगाकर अपने रुपये ब्याज समेत काट लेते हैं। मिल मालिक खन्ना किसानों की नहीं मज़दूरों का शोषण करते हैं। वह मज़दूरों को मज़दूरी घटा देता है।

पुलीसों के अत्याचारों के बारे में भी गोदान में वर्णित है। अत्याचारों का कोई हद नहीं था। कानून एक तरह के मकडी के जाल जैसा है। यहाँ ब्रिटीश पुलिस पद्धति के प्रतिनिधि रिश्वतखोर दरोगा की काली करतूत खूब देखने को मिलता है। हीरा ने ईर्ष्यावश होरी की गाय को ज़हर देकर भाग निकला। पुलिस दारोगा तो अवसरों की तलाश में ही होता है। खबर पाते ही आ धमके दोरोगा होरी से पैसा ऐंठने के लिए तलाशी लेने की बात चलाते हैं। होरी अपनी मर्जाद रखना चाहता है, इसलिए मुकदमा चलाने के लिए पैसा देने के लिए भी पैसा रिश्वत के रूप में देना पडा।

परोक्ष रूप से किसान का शोषण करनेवालों में शहर के हाकिम अग्रगण्य हैं। देखली, इजाफा आदि की जो कार्रवायी ज़मीन्दार अपने आसामियों के विरुद्ध करता है, ये हाकिम रिश्वत खाकर किसानों के खिलाफ डिग्री दे देते हैं। बिरादरी का भय और पंच भी होरी का शोषण कर रहे हैं। प्रेमचन्द ने परंपरागत धर्म की अपने उपन्यासों में स्थान - स्थान पर खूब खिल्लियाँ प्रणाली उडायी हैं। इसके लिए उन्होंने व्यंग्य के नस्तर का सहारा लिया है। इस व्यंग्य के मूल में हास्य नहीं, घृणा ही है। इसलिए ही इस रचना में आते - आते ईश्वर और तथाकथित धर्म के प्रति उनका मन अविश्वासी हो गया था। आरंभ में ही वह स्पष्ट कहते हैं कि ईश्वर का रुद्र रूप किसान को सदा डराता रहता है। इसी से वे महाजन की कौडी तक नहीं लेते। ' गोदान ' में मरते समय भी धर्म शोषक होरी की अवस्था बडी विचित्र है। पूँजीवादी और मज़दूर जैसे दो वर्गों के संघर्षों की कहानी भी भले ही इस अवस्था का कारण है।

वास्तव में समाज की गन्दी - सडी परंपराओं और मर्यादाओं में जकडा हुआ किसान इन समाजवालों के शोषण का शिकार होता है। प्रस्तुत उपन्यास में प्रेमचन्द ने ग्राम और शहर की तुलना करने का प्रयास किया है। शहर में होनेवाले दानवत्व और गाँव में हानेवाले मानवत्व का सुन्दर चित्रण इससे प्रस्तुत है। उस युग के तमाम समस्या ओं का वर्णन इस उपन्यास में है, पर

किसान की समस्या उसका बीज है। उस बीज को वृक्ष बनाने के लिए अन्य समस्याओं का भी सहारा उन्होंने लिया है।

16 - गोदान में यथार्थवाद और आदर्शवाद

आदर्शवाद और यथार्थवाद साहित्यकार द्वारा जीवन को चित्रित करने के दो भिन्न - भिन्न दृष्टिकोण हैं। आदर्शवान लेखक अतीत या वर्तमान जीवन में महान या भव्य चरित्रों का चित्रण करते हैं। यथार्थवादी लेखक जनवादी होता है वह प्राकृत जन का चित्रण ही अपनी रचना का विषय बनाता है। जब आदर्शवादी लेखक जीवन की सामान्य बुराइयों पर ध्यान नहीं देता या उन्हें जानकर छोड देता है तब यथार्थवादी साधारण का चितेरा होता है। साधारण मानव चित्रण, साधारण घटना साधारण भाषा अर्थात् सब कुछ साधारण और सुन्दर होना यथार्थवादियों का नारा है। साहित्य का उद्देश्य यदि संस्कारशीलता में निहित है तो निश्चय ही आदर्श साहित्य की सबसे बडी लब्धि होती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के संदर्भ में उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का सिद्धान्त विशेष मतभेदवाली चर्चा का विषय रहा। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से उनका मतलब है - " इसमें संदेह नहीं कि समाज की कुप्रथा की ओर उसका ध्यान दिलाने के लिए के यथार्थवाद अत्यंत उपयुक्त है। यथार्थवाद यदि हमारी यों मनोरम स्थान में पहूँचा देता है। इसलिए वही उपन्यास उच्च समझी जाती है जहाँ आदर्श और यथार्थ का समन्वय हो। आदर्श को सजीव बनाने के लिए भी यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है "।

प्रेमचन्द स्वयं आदर्शवाद और यथार्थवाद दो अतिया मानते हैं। कोरे यथार्थवाद और कोरे काल्पनिक आदर्शवाद को व्यर्थ माना है। इसलिए प्रेमचन्द आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के पक्षपाती रहे। प्रेमचन्द अपने गोदान पूर्व की रचनाओं में यथार्थोन्मुख आदर्शवादी है अतः यथार्थ से आरंभ करके प्रायः सभी उपन्यासों की परिणति आदर्श में करते रहे हैं। अंत तक जाते - जाते प्रायः सभी बुरे पात्रों का हृदय - परिवर्तन हो जाता है। या वे रंगमंच से हरा दिया जाते हैं। अतः रक्ष की असत्य पर विजय करा दी जाती है। परिणामतः किसी आदर्श ग्राम, आश्रम या सदन के निर्माण में उपन्यास का अंत होता है। इसलिए है कि पहले उपन्यासों को यथार्थवादी आदर्शोन्मुख रचनाएँ कह उठते हैं।

' गोदान ' में यह दृष्टिभेद स्पष्ट दर्शनीय है। गोदान को यथार्थपरक सतोन्मुख रचना मानना वस्तुस्थिति के अधिक निकट है। यद्यपि ' गोदान ' एक यथार्थवादी कृति के रूप में प्रशंसित है यथपि इसमें भी मुंशीजी का सतोन्मुखी दृष्टिकोण सर्वत्र व्याप्त है। इसके सभी पात्रों के चरित्रांकन में इसका पुट है। यह आदर्शवादिता उनके जीवन की यथार्थताओं से पूर्णतया घुलमिल गयी है। यहाँ कुछ पात्रों के संबन्ध में यह आरोपित सी प्रतीत होती है। ' गोदान ' में जीवन की आदर्श प्रेरणाएँ बराबर पायी जाती हैं।

' गोदान ' में प्रेमचन्द ने समाज, जीवन और व्यक्ति की समस्याओं का अंकलन यथातथ्यात्मक धरातल से किया है किंतु उनका समाधान आदर्श संभलित है। ' गोदान ' में श्रमिक अहिंसात्मक नीति का ही प्रयोग करते हैं। पर अधिकारियों द्वारा अपने अधिकार का अपहरित होते देखकर वे प्रतिशोधात्मक हिंसामूलक क्रान्ति पर उत्तर आते हैं। ' गोदान ' की इस घटना को लेकर ही बहुत सारे आलोचक इसको यथार्थवादी प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। पर इसके संपूर्ण अध्ययन के बाद निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन समस्याओं का ऐसा समाधान उनका लक्ष्य नहीं था। ' गोदान ' में इस प्रकार का समाधान तो विवशता की उपज प्रतीत होता है।

'गोदान' के होरी कभी अन्याय का प्रतिशोध नहीं करता। वह अनायास ही इनके समक्ष घुटने टेक जाता है। समाधान के दृष्टिकोण में किसी प्रकार के नये परिवर्तन के नये परिवर्तन के सिद्धान्त 'गोदान' में प्रेमचन्द दे नहीं पाये हैं।

होरी का जीवन किसी भी साधारण कृषक के जीवन की यथार्थ झाँकी है। होरी कभी अपने भाइयों के स्वार्थ को अपहरित करने और नुक्सान पहूँचाने की बात नहीं सोचता। हीरा को बचाने के लिए करनेवाले काम, अपने खेत में रुपाई न होने के कारण बच्चों भूखों मर जाने पर भी हीरा के पत्नी के घर अनाज से भर जाना, अपनी मान - सम्मान की प्रतिष्ठा में अपने को कुर्बान देना आदि प्रेमचन्द की आदर्शात्मक चेतना के स्थायित्व का ही पता देती है। प्रेमचन्द की चेतना यहाँ यथार्थ से प्रेरित होती तो आगे वे अनेक ऐसे दुर्बलक्षणों की सृष्टि कर सकते।

डा. मेहता का चरित्र तो अनेक प्रकार के किसी आदर्श प्रोफसर का ही प्रतिनिधित्व करता है। उनका गजब का आत्मसंयम, निरभिमानता, दो टूक बात कहने की निर्भयता, स्वयं को कष्ट में डालते हुए भी अडिग परोपकार वृत्ति; नारियों के परंपरागत आदर्शों में आस्था आदि चरित्रिक पहलू आदर्शवादिता का ही परिचायक है। मिस मालती को अपने आदर्शों के अनुकूल पाकर वे उसके समश्र जिस तरह खुलकर चित्रित किये गये हैं उससे भी उनके चरित्र को मानवीयता का संस्पर्श मिला है, अन्यथा वे जनसाधारण से विशिष्ट ही है।

प्रेमचन्द ने न तो किसी देवता की कल्पना की है न दानव की। अपनी दुर्बलताओं और सबलताओं से युक्त यथार्थ मानव को ही पात्र के रूप में उन्होंने चुना था। अतः हम कह सकते हैं कि 'गोदान' गद्य में लिख गये कृषक का महाकाव्य है। हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द का इस दृष्टि से विशिष्ट महत्व है कि उन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में भारतीय कृषक की परिस्थिति जन्य विवशता को पूर्णतया उभर दिया है। एक ईमानदार लेखक का दायित्व 'गोदान' में सर्वथा विद्यमान है। प्रेमचन्द चाहते तो गोबर के क्रान्तिकारी रूप की कल्पना आसानी से कर सकते थे और एक वस्तुवादी कलाकार के नाते उन्होंने ईमानदारी से इस कल्पना को यथार्थ से आगे नहीं बढाया। अतः घटनाओं एवं प्रसंगों की दृष्टि से नहीं, अपितु उद्देश्य की दृष्टि से भी प्रेमचन्द ने यहाँ आदर्शवादी दृष्टिकोण बिलकुल छोड दिया है।

मिस मालती जैसे श्रृंगार संस्कृति की हावनिपुण अर्वाचीन नारी से वीतराग समाज सेविका बन जाती है। यदि प्रेमचन्द का विश्वास यथार्थ के नग्नरूप को चित्रित करने में होते तो फिर मिस मालती के चरित्र की परिणति कुछ दूसरी भी स्थिति में होती। किंतु मालती जो हमें प्रारंभ दीखती है। वही अंत में नहीं देखती मिस मालती के चरित्र के चित्रण में यह देख सकते हैं। प्रेमचन्द की आदर्शात्मक चेतना ऐसे चरित्रों का उन्नयन के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करता है। इसलिए मालती का ध्रुवांक परिवर्तन अप्रत्याशित और आकस्मिक प्रतीत नहीं होता। धनिया, गोविन्दी, झुनिया, सिलिया, सोना, रूपा आदि चरित्रों के निर्माण के मूल में प्रेमचन्द की आदर्शात्मक चेतना ही उजागर होती चलती है।

'गोदान' में यदि सर्वाधिक यथार्थपरक चरित्र धनिया का है तो सर्वाधिक सतोन्मुख चरित्र मालती का है। उपन्यास के आरंभिक पृष्ठों में रंगीन तितली के रूप में उभरनेवाली मालती उत्तरोत्तर मधुमखी बनती जाती है और जब स्वयं उपन्यासकार उसके मधुमक्खी होने की घोषण करता है तब उसके चरित्र में तदनुकूल गुण निखर उठती हैं। वह यदि कुछ निर्धन लोगों को मुफ्त दवा देती है तो उसमें कुछ भी विचित्र या विशेष आदर्शवादिता नहीं है।

' गोदान ' को यथार्थवादी कृति सिद्ध करते हुए यह तर्क बार - बार प्रस्तुत किया गया है कि कृषक जीवन का यथार्थचित्र प्रस्तुत करने की दिशा में ' गोदान ' अप्रतिम कृति है, किंतु जहाँ तक ' गोदान ' में किसी आश्रय या सदन की योजना न करने का तर्क है हम यह कहना चोहेंगे कि होरी और धनिया के अतिरिक्त उपन्यास के सर्वाधिक प्रमुख पात्र प्रो.मेहता डा. मालती के माध्यम से प्रेमचन्द इस अंतिम उपन्यास में भी एक आश्रम की रचना करने से नहीं मातादीन का चरित्रांकन भी अतोन्मुखी दृष्टिकोण से किया गया है। आरंभ में वह बस नीच और स्वार्थांध व्यक्ति है और अंत में उससे प्रायश्चित कराया जाता है। मातादीन की अवैध प्रेमिका सिलिया आदर्शोन्मुखता की दृष्टि से उन्नत पर है। गोदान नें ऐसे पात्रों की भी कभी नहीं है जिनके जीवन पर आदर्शों की छाया भी नहीं है। धानिया और गोबर इसका प्रमाण है। जब धनिया गाय की हत्या करनेवाला हीरा का नाम स्थापित करने की चेष्टा की तो होरी उसे बुरी तरह पीटता रहता तो भी वह अपने निश्चय से विचलित नहीं होता। ' गोदान ' में होनेवाले ग्रांमीण झगडों का संदर्भगत तथ्य ही इस बात का प्रमाण है कि उसमें ग्रामीण परिवेश को कितनी बारीकी से देखा और चित्रित किया गया है। ' गोदान ' में दारोगा से लेकर पं. मातादीन, पटेश्वरी, नोहरी,. झुनिया आदि सभी उसके कटु - व्यंग्य प्रहरों के लक्ष्य बनते हैं। उसके भूल में आादर्शवादिता न होकर दो टूक बात कहने का साहस भी है। उपन्यास का होरी बूत दया तथा स्नेह संकल्प का मंगलमय समन्वय है। निश्चय ही यह संकल्प प्रेमचन्द की आदर्शात्मक चेतना की उपज है। अन्यथा यों होरी का चरित्र विरोधी परिस्थियों के समन्वयका उदाहरण प्रस्तुत करता।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि ' गोदान ' में यथार्थ और आदर्श का गंगा - जमुनी सम्मिश्रण है। ' गोदान ' में आदर्शवादी संभव्यताएँ यथार्थ की व्यवहारिक भूमि पर ही आधृत है। इसका वर्णन शैली यथार्थधर्म अवश्य है। पर उसकी चेतना आदर्शात्मक है। अतः प्रेमचन्द की औपन्यासिक चेतना यथार्थोन्मुख आदर्शवादी से आदर्शोन्मुख यथार्थवादी में परिणति का स्पष्ट प्रमाण 'गोदान' हो।

17 - प्रेमचन्द की भाषाशैली

मुंशी प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा - साहित्य के लिए एक आदर्श भाषाशैली का निर्माण किया। गद्य शैली निर्मिता के रूप में भी उनका अमर स्थान हिन्दी में सदा बना रहेगा। भाषा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द ने सरलता, सहज स्वच्छन्दता, मुहावरा - लोकोक्ति प्रयोग, स्वाभाविक लाक्षाणिकता आदि का जो आदर्श अपनाया, वह आज तक सर्वमान्य है। जन भाषा का जो प्यारा रूप उनकी रचनाओं में पाया जाता है, वही प्रायः सब लेखकों - विशेषकर कथाकारों - के लिए अनुकरणीय बना।

उनकी भाषा के संबन्ध में डा.धीरेन्द्रवर्म ने लिखा है -

" शैलीकार की दृष्टि से प्रेमचन्दजी का स्थान हिन्दी साहित्य में असाधारण है। सरल, सुबोध, मुहावरेदार सजीव गद्य शैली का अभ्यास उर्दू लेखक के रूप में वह पहले ही कर चुके थे। अपने इस अभ्यास को वह अपने साथ ही हिन्दी के क्षेत्र में लेते आ "।

प्रेमचन्द की भाषाशैली के दो रूप स्पष्ट लक्षित होते हैं - एक है ग्रामीण पात्रों की बोल - चाल की भाषा का रूप और दूसरा प्रेमचन्द की निजी भाषा का साहित्यिक रूप। सन् १८३० में पं.वनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा यह पूछे जाने पर कि आप पर किस लेखक की शैली का प्रभाव पडा है? उन्होंने उत्तर दिया था -

" मेरी लेखन - शैली पर किसी दूसरे लेखक की शैली का कोई विशेष प्रभाव नहीं पडा है। लेकिन पं. विश्वनारायण दर और डा.रवीन्द्रनाथ की शैली का कुछ प्रभाव पडा रहा है "।

ग्रामीण पात्रों की भाषा में ग्राम्य भाषा शब्दों का तद्भवरूप और स्थानी जनभाषा का रूप पाया जाता है। ठेठ ग्रामीण शब्द जैसे पुछत्तर, क्लोर, नफरी, दौंगडा, अनघड नाद, शातिव, मडैया, मोरमरदी, गोडना, कोलहाड, थेगालिया आदि प्रेमचन्द ने जोडी शब्दों का प्रयोग सर्वत्र किया है। जैसेः रस - पानी, सानी - पानी, असनान - पूजा, मिलन - जुलना, साली - सलहज, दूद - घी, घूम - घास, ठीक - ठाक, मोल - भाव, धूम - धाम, धरना - उठना दाम - कौडी आदि।

प्रेमचन्द की भाषाशैली के प्रमुख गुण उनकी सरलता और प्रवाह है। उनका अभिमत था कि ' जनसाधारण के लेखक को जनसाधारण की भाषा में लिखना है '।

ग्रामीण भाषा का सुन्दर रूप इस वार्तालाप में देखिए स्वाभाविक मुहावरे, लाक्षणिक व्यंजक शब्द, दित्व शब्द, छोटे - छोटे वाक्य, कोई - कोई ठेठ ग्रामीण शब्द, भावानुरूपता आदि सब गुण इसमें विद्यमान है -

भोला ने शान जमायी - " अभी बाज़ार बहुत तज था मेहता, इसके अस्सी रुपये देने पडे। आँखें निकल गयीं। तीस - तीस रुपये तो दोनों क्लीरों के दिये। तिस पर ग्राहक रुपये का आठ सेर दूध माँगता है "।

" बडा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई,लेकिन फिर लाये भी तो वह माल कि यहाँ दस - पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं "।

भोला पर नशा चढने लगा। बोला - रायसाहब इसके सौ रुपये देते थे। दोनों क्लारों के पचास - पचास रुपये लेकिन हमने न दिये। भगवान ने चाहा तो सौ रुपये इसी ब्यान में पीर लूँगा।

" इसमें क्या संदेह है भाई! मालिक क्या खाके लेंगे। नजराने में मिल जाय तो भले ही ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली - भर रुपये तकदीर के भरोसे गिन देते हो ..... "।

प्रेमचन्द की भाषा में कहीं - कहीं विशेषण के क्रिया - रूप प्रयोग बडे स्वाभाविक और सुन्दर लगते हैं, जैसे सुन्दर गोहुआँ रंग साँवला गया था, चेहरा चिकना गया, आदि।

प्रेमचन्द के लाक्षाणिक प्रयोग तो और भी बढिया है। भावों का मानवीकरण भी कई स्थानों पर बहुत भव्य है, जैसेः ' होरी का क्रोध रास्सियाँ तुडा रहा था, ' बूढा - क्रोध ' (विशेषण - विपर्यय)वह निर्लजता जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, मत आशा (विशेषण - विपर्यय) सिलिया के अन्तःकरण की सारी कोमल भावनाएँ इस वक्त मुँह खोले बैठी थी कि आकाश से अमृत वर्षा होगी। भावों की यह मूर्तिमत्ता प्रेमचन्द की भाषा में प्रचुरता से पाई जाती है।

प्रेमचन्द की वाक्या र्थोपमाएँ जहां एक ओर भाषा को सुन्दर प्रभावशाली बनाती है, वहाँ अनेक स्थानों पर वे सूक्तियाँ बन गयी हैं। प्रेमचन्द,ने रूपक - उत्प्रेक्षा अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है, जैसे - " सेवा ही वह सिमेंट है ..... "। सांग रूपक का अत्यंत बढिया लाक्षाणिक प्रयोग इन प्रसिद्ध पंक्तियों में द्रष्टव्य है - " वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकार को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। ..... जहाँ नीचे का जनरव हम तक नहीं पहूँचता "।

उपमा - रूपक, उत्पेक्षा, लाक्षणिकता का यह सुन्दर संगम प्रेमचन्द की प्रौढ साहित्यिक अलंकृत शैली का श्रेष्ठ रूप है, जिसमें गद्यकाव्य का - सा आनंद आता है। जीवन के मार्मिक तन्यों का ऐसा मनोरंजक प्रकाशन सधे हुए साहित्यकार की ही तूलिका से संभव होता है।

इस प्रकार प्रेमचन्द की भाषा शैली अत्यंत प्रभावशाली है। गोदान में शायद ही कोई ऐसी पँक्ति ने जिसमें मुहावरा, लाक्षाणिक प्रयोग, व्यंग्य अलंकार अथवा अन्य सशक्त प्रयोग न हों। सरलता, सजीवता और प्रवाहात्मकता प्रेमचन्द की भाषा के गुण है ही। भावानुरूपता और पात्रानुरूपता भी सर्वत्र रहती है। भावपूर्ण स्थलों पर भावात्मक शैली, विचारपूर्ण स्थल पर विचारात्मक घटना वर्णन में सरल कथात्मक शैली, हास्य के प्रसंग पर हास्यपूर्ण धारा आदि भिन्न - भिन्न शैलियों का सहज समानेश 'गोदान' में पाया जाता है। मिर्जा खुर्शेद, तंखा आदि की उर्दू शैली भी यहाँ हिन्दी की प्रकृति में घुलमिल गयी है, पृथक नहीं रही। यह प्रेमचन्द की दूरदर्शिता और यथार्थ - भाषा दृष्टि का जबरदस्त प्रमाण है। प्रेमचन्द की सफल भाषा शैली ने उपन्यास की सरसता में महत्वपूर्ण योग दिया है। ग्रामीण भाषा ने वातावरण को सजीव बनाया है। सामान्यतः प्रेमचन्द की भाषा शैली अत्यंत सफल है। गोदान की भाषा चित्रात्मक है।

प्रेमचन्द की हिन्दी के संबन्ध में जैनेन्द्र कुमार लिखते हैं - "अब तक शायद उन्हीं की भाषा है, जिसे हिन्दी लेखकों में हम राष्ट्रभाषा के मानकरूप में स्वीकार करते हैं। यह भाषा के साहित्यिक वैभव का सूचक न मान लिया जाय। मैं यों कहूँगा कि उनकी भाषा सांकेतिक नहीं है, जितनी वर्णनात्मक है, अर्थात् व्यंग्य की भांगिमा से अभिधा का उपयोग उसमें अधिक है"।

विष्णु प्रभाकर प्रेमचन्द की भाषा में शिशु की सी सरलता खोजते हुए लिखते हैं -

"उनकी भाषा में बामुहावरा उर्दू की तराश और चुश्ती के साथ - साथ हिन्दी की हार्दिकता का अद्‌भूत समन्वय हुआ है और आगे चलकर जैसे विसंगतियों और विडंबनाओं का अहसास उन्हें होता गया, वैसे वैसे उनकी भाषा में संवेदना की सघनता और विश्लेषण की प्रवृत्ति उभरती दिखाई देती है"।

जैनेन्द्रकुमार के अनुसार -

"प्रेमचन्द भाषा के जादूगर है। मुहावरे उन्हें सिद्ध है। ... प्रेमचन्द की कलम की धृम है। वेशक वह धृम के लायक हैं। उनकी चुस्त भाषा पर, उनके सुजडित वाक्यों पर, मैं किसी से कम मुग्ध नहीं हूँ"।

18 - <u>सप्रसंग व्याख्या कीजिए</u>

1. हमारा जन्म इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएँ और बडों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका, पर मूल ज्यों का व्यों सिर पर सवार है।

प्रेमचन्द हिन्दी के अमर उपन्यास सम्राट माने जाते हैं। वे हिन्दुस्तान की नयी राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार रहे हैं। वे उपन्यास को मानव - चरित्र का चित्र मात्र समझते हैं। उनके उपन्यासों में भारतीय समाज की धड़कन हम देख सकते हैं।

उन्होंने पहली बार हिन्दी उपन्यास को ऐयारी तिलस्म की कुतूहल भरी गलियों से निकालकर, सामान्य जनजीवन के रजमार्ग पर खडा कर दिया। वे अप्रिय सत्वों के चितेरों रहे हैं। विराट मानव संस्कृति की धारा में भारतीय जन - संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया, उसके प्रमाण प्रेमचन्द के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकड़ों कहानियाँ हैं।

प्रेमचन्द को मानवता में अटूट आस्था थी। उनके उपन्यास भारतीय ग्रामीण चेतना का जीवंत इतिहास है। 'गोदान ' उनका अंतिम पूर्ण उपन्यास है। यह ग्रामजीवन और कृषक संस्कृति का महाकाव्य ही है। ग्राम्य जीवन को दैन्य, विपिन्नता, विवशता और शोषण का बडे पैमाने पर मार्मिक चित्रण इसमें मिलता है। शोषण के चक्रव्यूह में पडे भारतीय किसान की कहानी है 'गोदान'। बिगडी हुई आर्थिक दशा के साथ अशिक्षित, दलित, धर्मभीरू, किसान वर्ग के कर्ज की कथा प्रेमचन्द गोदान में हमें बता देते हैं।

प्रस्तुत उद्धरण होरी का है। गोदान के तीसरे अध्याय में पहले हम होरी और गोबर की बातचीत देखते हैं। गोबर का क्रातिकारी व्यक्तित्व भी स्पष्ट होता है। फिर होरी - गोबर - भोला की बातचीत चलती है। भोला एक किसान है। उसके पास गाय भी है। गाय की लालसा में, भोला के माँगने पर उसे होरी भूसा देता है। भूसा के खाँचे लेकर तीनों भोला के घर जा रहे हैं। रास्ते में बातें चलती हैं। दशहरा आने, रायसाहब के यहाँ नाटक खेलने तथा उसमें माली की भूमिका निभाने की बात करते हैं। तब भी होरी के मन में जीवन - की मुसीबतों की सोच है। होरी भोला से कहता है। अनाज खलिहान में ही तुल गया। ज़मीन्दार और महाजन ने अपना - अपना ले लिया। मेरे लिए तो सिर्फ पाँच सेर अनाज बचा है। यह भूसा रोतों रात ढ़ोकर छिपा दिया था। जमीन्दार तो एक है, मगर महाजन तीन - तीन है। साहुआइन, मँगरु और दातादीन। हमारा जन्म इन बडों के घर भरने केलिए ही हुआ है। हमें कर्ज लेना और इसका सूद चुकाना ही जीवन कर करने पडेगा। मूल कर्ज वहीं रहेगा।

प्रस्तुत वाक्यों के द्वारा प्रेमचन्द ने किसानों के शोषण चक्र का परिचय दिया है। जोंक की तरह गरीबों के खून चूसनेवाले ज़मीन्दारों व महाजनों का चित्रया हाँ प्रस्तुत है। साथ ही होरी के हृदय का सत्य भी। अशिक्षित तथा धर्मभीरू किसान कर्ज की चक्की में सदा पिसती रहती है। गोदान की मूल समस्या शोषण और कर्ज की मस्या है। भोला के कथन में यह और स्पष्ट है - "हम लोग तो बैल है, और जुतने केलिए पैदा हुए हैं"। ज़मीन्दार और महाजनों के साथ सरकारी कर्मचारी, पुलिस, पटवारि पंच और पुरोहित वर्ग की हमेशा इन लोगों का शोषण करते हैं। डा. रामविलास शर्मा के अनुसार गोदान की मूल समस्या ऋण की समस्या है। होरी रायसाहब का आखेट मृग ही नहीं है, स्वयं समर्पित आहार भी है। यही समकृष्ण मिश्रजी की होरी पर राय है। शोषण चक्र में उसका अपना कोई जीवन नहीं। इसीलिए इन्द्रनाथ मदान ने ठीक कहा है - पैदा हुआ, कष्ट सहता रहा और मर गया यही होरी का जीवन है। वास्तव में गोदान की समस्या होरी की समस्या है, होरी की समस्या कृषकों की समस्या है और कृषकों की समस्या भारत के अस्सी प्रतिशत लोगों की समस्या है। पूँजीवादी - सामंतवादी - महाजनी सभ्यता का सही दस्तावेज़ है 'गोदान '।

<u>सप्रसंग व्याख्या - नमूने के प्रश्न</u>

<u>अध्याय - 1</u>

1. पत्रों के खड़कने पर घोड़ा आकारण ही .....
..... आत्मा का अंश बन गयी की।
2. उसने पीछे फिरकर देखा ..... जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बंधेगी।

<u>अध्याय - 3</u>

1. संपत्ति बडी तपस्या से मिलती है ..... तो भोगें क्यों?
2. आदमी वह है, जिनके पास धन है ..... और जुतने केलिए पैदा हुए हैं।

<u>अध्याय - 4</u>

1. मानो वह भगवान को भी धोखा देना चाहती .....
..... नयी विपत्ति भेद दें।
2. गाय क्या है, साक्षात् देवी का रूप ..... प्रसन्न - चित्त वह कभी न था।

CUP/8413/11/500/SDE — 4

अध्याय - 5

1. वह केवल जुगनू की चमक नहीं ..... रसिकों की लगावटबाजियों ने कुचल नहीं पाया था।
2. प्रथम मिलन में ही दोनों एक - दूसरे पर ..... कैसे न मिलेगी?

अध्याय - 6

1. प्रगति को ज़रा सी आहट पाते ही हम काँप उठते हैं .... सत्वहीन और मोहताज।
2. विवाह को में सामाजिक समझौता ..... आपको हाथ कट जाते हैं।

अध्याय - 8

1. तीस रूपये का कागद लिखने पर ..... जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता

अध्याय - 10

1. नीच कहने को नीच है ..... छोटी को तो उनकी लाज रखनी ही पडती है।
2. तुम्हें इस दुष्टा को घर में न रखना ..... दूध पी जाता है।

अध्याय - 11

1. तू क्यों बोलती है धनिया : पंच परमेसर ....हमारे दोनों बैल ले लेना।
2. आज उधर तुम्हारी वाह - वह ..... कली सुख की रोटी न मिली।

अध्याय - 17

1. हमारा धर्म है हमारा भोजन ..... हमारी रक्षा करती है।
2. इस जन्म में तो कोई आशा महीं ..... वह ली नहीं सधता।

अध्याय - 18

1. संसार में ऐसे बहुत कम प्राणी है ..... जिस नारीत्व को में आदर्श मानता हूँ, आप उसकी सजीव प्रतिमा।
2. जिसे संसार दुख कहता है, वही कवि केलिए सुख है .... वह कवि न रहेगा।

अध्याय - 23

1. कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है ..... मगर होता क्या है।

अध्याय - 28

1. केवल कौशल से धन नहीं मिलता .....शारीरिक शक्तियों के सामंजस्य का नाम धन है।
2. मेरे विचार में तो पीड़क होने से पीडित होना कहीं श्रेष्ठ है। ..... जल्द भूल गये?

अध्याय - 36

1. वह आधार जिस पर जीवन टिका हुआ था .....सी उसे उचित हो गये हैं ।
2. पाले हुए कर्तव्य और निपटाये हुए कालों का क्या मोह ..... हम न पूरा कर सके।
3. आँखों से आँसू गिर रहे थे ..... भूसी की मालिश करती।
4. महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।

Part II

भाग - 2

कफ़न तथा अन्य कहानियाँ

1 - कफन

'कफन' प्रेमचन्द की बहुचर्चित कहानी है, जिसमें आदमी के जीवन - संघर्ष का ही चित्रण हुआ है। यह एक सामाजिक कहानी है। इसमें प्रेमचन्द अपनी भौतिकवादी दृष्टि स्थापित करते हुए, मानवीय संबंधों के खोखलेपन और मूल्यहीनता की पहचान कराते हैं। कहानी के मुख्य पात्र घीसू और माधव ने परंपरागत नौतिकता तथा दायित्वशीलता पर व्यंग्य किया है, उच्च वर्ग के सामाजिक मूल्यों को नकारा था, क्योंकि इन सबके पीछे जीवन के प्रति उनकी एक नयी दृष्टि सक्रिय थी। व्यर्थता का यह बोध वस्तुवाद के नज़दीक ले जाता है, क्योंकि घीसू - माधव कफन के रूप में सामंती - मूल्यों और जीवन के प्रति भाववादी दृष्टि की व्यर्थता का अनुभव करते हैं।

कहानी के प्रमुख पात्र हैं - घीसू, माधव और बुधिया। ये चमार जाति के गरीब लोग थे। घीसू तथा माधव पिता - पुत्र हैं तथा माधव की पत्नी है बुधिया। घीसू और माधव बहुत कामचोर हैं। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना कामचोर कि आधा घंटा काम करता तो एक घंटा चिलम पीकर गुज़रता। इसलिए गाँव के लोग उन्हें काम केलिए बुलाते नहीं थे। ये लोग सारे गाँव में बदनाम हैं। घर में दो - चार मिट्ठी के बर्तनों के अलावा कोई संपत्ति नहीं। गाँव के लोग इन्हें कुछ न कुछ कर्ज देते थे। मगर ये लोग कर्ज लौटाते नहीं। घीसु की स्त्री बहुत पहले ही मर चुकी थी। जब से माधव की पत्नी बुधिया घर में आयी थी तबसे उसने घर में कुछ व्यवस्था की नींव डाली। वह खुद सारे दिन काम करती रहती और घीसू - माधव के पेट पालती।

एक दिन माधव की जवान बीबी बुधिया प्रसववेदना से कराह रही थी। तब ये दानों बाप - बेटा अलाव के सामने बैठकर आलू खा रहे थे। जाडे की रात थी और बुधिया दर्द से चिल्ला रही थी। पर इन दोनों ने बुधिया को दवादारू नहीं की। घीसू उसी वक्त ठाकुर की बारात की याद करता रहा। घीसू लडकीवालों के घर में मिली दावत के बारे में वह माधव से बताता है। अंत में आलू खाने के बाद दोनों अलाव के सामने सो गये।

बुधिया मर गयी। उसके पेट में बच्चा भी मरा था। माधव और घीसू ज़ोर से चीखने और छाती पीटने लगे। उनका रोना सुनकर पड़ोसवाले दौड़ आये और दिलासा देने लगे। गाँव के ज़मीन्दार को उन पर दया आयी और उन्हें कुछ रुपये दिये। एक घंटे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम मिल गयी। दुपहर को घीसू और माधव दोनों बुधिया केलिए कफन लाने केलिए बाज़ार गये।

बाज़र में पहुँचकर दोनों घूमने लगे। वे कई दूकानों में गये। लेकिन उनके पसंद का कफन मिला नहीं। अंत में शाम होने पर दोनों हल्का कफन ढूँढते एक मदिरालय के सामने पहूँच गये। किसी दैवी प्रेरणा के समान वे दोनों कुछ देर असमंजस में पड़ गये और आखिर शराब पीने अंदर चले गये। वहाँ से दोनों ने भर - पेट खाना खाया और शरब भी पिया। खाना खाकर बची हुई पूड़ियाँ दोनों ने एक भिखारी को दी। दोनों ने कहा कि बुधिया ज़रूर वैकुंठ पहूँचेगा। दानों उल्लास की लहरों में तैरते रहे। नशा खतम होने पर दोनों दुख से पीडित हो गये और सोचा कि बुधिया को ज़िन्दगी में कभी - भी सुख न मिला। अंत में घीसू माधव को समझते हैं कि बुधिया भाग्यवती है, छोटी उम्र में ही वह लौकिक जीवन से मुक्ति प्राप्त कर सकी।

प्रस्तुत कहानी में घीसू और माधव की गरीबी तथा उससे उत्पन्न विचित्र मनोवृत्ति का चित्रण है। समाज़ से रात - दिन मेहनत करनेवालों की हालत उनकी हालत से अच्छी नहीं थी। मेहनती किसानों के मुकाबले में उनकी दुर्बलताओं से लाभ उठानेवाले ज़मीन्दार ज़्यादा संपन्न थे। अतः घीसू और माधव में कामचोर मनोवृत्ति का पैदा होना सहज बात है। घीसू और माधव न ही मेहनत करते हैं और न ही अपने भविष्य के बारे में सोचते हैं। ज़िन्दगी की उलझनों की चिंता उन्हें सताती नहीं। वे सोचते हैं कि भगवान उन्हें सबकुछ देगा। सामाजिक परिस्थिति का प्रभाव प्रत्येक मानव के व्यक्तित्व को परिवर्तित करता है। जिस समाज में मेहनत करनेवाला तथा आरामतलब लोगों की एक ही स्थिति है, वहाँ लोगों का आलसी हो जाना सहज बात है।

अलाव से आलू निकलकर जलते - जलते खाना, हलक और तालू के जलने के बावजूद अपनी भूख शांत करने केलिए व्याकुल हो उठना और अभाव से जूझना ज़िन्दगी की बैचैनियों को प्रकट करता है। यहाँ ऐसी विसंगतियों के चित्रण का उद्देश्य रहा है कि भारत के आदमी की गरीबी को मार्मिक ढंग से व्यक्त करना और यथार्थ की कटुता को उभारना। उनकी सपाट बयानी में जीवन का अंतःसत्य मूर्तिमान हो उठा है।

डॉ. बच्चनसिंह के शब्दों में, " डी - हयूमनाइज़शन की चरम - परिणति, व्यर्थता का चरम बोध वहाँ होता है, जहाँ उनकी बोध नहीं होता। मधुशाला वह जगह है, जहाँ बोधहीनता का बोध होता है। इस बोध को प्रेमचन्द ने नाटकीय क्रिया - व्यापारों द्वारा अभिव्यक्त किया है "। कुछ आलोचकों ने ' कफन ' की आलोचना अस्तित्ववादी दर्शन के आधार पर की है।

हिन्दी के प्रमुख कथाकार अमरकांत ने लिखा है - " प्रेमचन्द ने इस कहानी में सही मुहावरों की रचना की है, जो एक महान उपलब्धि है। उन्होंने मानवीय करुणा, मानवीय गरिमा, मानवीय स्वतंत्रता संबंधी धारणाओं, मन्यताओं एवं दृष्टिकोण को नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रेमचन्द की इस कहानी से हमें संवेदना के धरातल पर अपने देश व समाज, उसके ढाँचे व इतिहास को सपझने में पूरी मदद मिलती है "।

प्रस्तुत कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द ने आम जनता की समस्याओं का चित्रण, शोषित - शोषक वर्ग की तुलना आदि की है। अपनी कहानियों में उन्होंने कल्पना, विचारधारा और जनता के स्वप्नों को भी पूरा स्थान दिया, यहाँ तक कि साधारण वर्ग के लोगों के मनोविज्ञान का भी इस्तेमाल किया।

2 - लेखकः प्रवीण की चरित्रगत विशेषताएँ

वह अपने टूटे - फूटे घर के आँगन में चहल कदमी कर रहा है। दाढ़ी बढ़ी। बाल खिचड़ी और पके। मुँह लंबा, पतला और पिचका। झुर्रियों से भरा। कमीज कंधे पर फटा हुआ। ऊँची धोती। अस्त - व्यस्त चहल कदमी। सुमित्रा के पास अब केवल एक ही आना बचा है। कोई उधार देनेवाला नहीं रहा। दो - एक पत्रिकाओं में अपनी कविताएँ, लेख आदि भेजे थे, वहीं से मनीआईर की प्रतीक्षा कर रहा था। किंतु, व्यर्थ, क्योंकि वैसी प्रतीक्षा वह कोई पहली बार नहीं कर रहा था। उसे निराशा अधिक थी और आशा कम। बीस वर्ग से लगातार वह लिख रहा है। जवानी में ही उसे यह रोग लग गया था, और आज बीस साल से उसे पाला हुआ था। इस रोग में देह घुल गयी, स्वास्थ्य घुल गया और चलीस की अवस्था में बुढ़ापे ने आ घेरा, पर यह रोग असाधरण था। सूर्योदय से आधी रात तक यह साहित्य का उपासक अंतर्जगत में डूबा हुआ, समस्त संसार

से मुंह मोड़े, हृदय के पुष्प और नैवेद्य - चढ़ाता रहता था। पर भारत में सरस्वती की उपासना लक्ष्मी की अभक्ति है। जीवन की आवश्यकतायें घटते - घटते सन्यास की सीमा को भी पार कर चुकी थी। अगर उसे कोई संतोष था तो यह कि उनकी जीवन सहचरी त्याग और तप में उससे भी दो कदम आगे थी।

लक्ष्मी की सबसे निर्दय क्रीडा थी कि प्रकाशक और संपादक उसे सहृदयातापूर्वक दान भी नहीं देते थे। अब तो निराशा की इस सीमा तक पहूँच गये थे जब उसे लगता जैसे सारी दुनिया उसके खिलाफ कोई षड्यंत्र रच रही है।

लेखक प्रवीण के चरित्र का वैज्ञानिक अध्ययन करने केलिए हमें इस प्रश्न का उत्तर देना पडेगा कि उसकी साहित्य रचना का प्रयोजन क्या है? वह अपने को दीपक की भाँति जलाकर किसको प्रकाश दिखा रहा है तथा दिखाना चाहता है? एक - एक पैसे केलिए उसे दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है, तो आखिर क्यों? अपनी आर्थिक हालत का अपराधी वह किसे मानता है?

लेखक एक तरफ अपने को दीपक समझता है जिसका कार्य जलना है और दूसरी ओर वह ख्याति भी चाहता है। सुमित्रा से कहता है, "प्रत्येक प्राणी के मन में आदर और सम्मान की एक क्षुधा होती है, इसलिए कि यह हमारे आत्म विकास की एक मंजिल है"। वह किसप्रकार का आदर चाहता है, इसका प्रमाण राजा साहिब का नियंत्रण है। फूले नहीं समाताः "जिसे रईस और राजे अमंत्रित करें वह कोई ऐसा वैसा आदमी नहीं हो सकता"। उसे राजा साहब से कोई सैद्धांतिक मतभेद नहीं। वह राजा साहब की अमीरी तथा अपनी गरीबी में कोई संबंध नहीं देखता। वह राजा सहब के दरबार से इसलिए लौट आता है कि वहाँ उसके सूट - बूट धारी व्यक्तियों से कम आदर मिलता है। वह अपने आपको उन लोगों से किसी कदर भी हीन नहीं समझना चाहता। उसकी इस चाह में उसके मन की हीन - भावना झाँकती है। उसमें अन्य -सम्मान है। किंतु वह कोई ठोसे सिद्धांतों पर नहीं बल्कि अपनी व्यक्तिगत अवस्था पर निर्भर है। और अपनी व्यक्तिगत समस्यओं की सामाजिक पृष्ठभूमि का उसे ज्ञान नहीं। उसको यह बात मालूम नहीं कि उनकी गरीबी, तबाही का कारण, सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था है जो लेखक का कोई मूल्य नहीं मानती। वर्तमान समाज में प्रत्येक वस्तु यहाँ तक कि व्यक्ति की मेहनता भी दौलत पर बिकती है। किंतु साहित्य का क्या मूल्य है? कुछ नहीं। हमारे समाज में आज लेखक शब्द गरीबी और भुखमरी का पर्याय हो गया है। यहाँ पर उस साहित्यिक का मूल्य है जो स्थिर स्वार्थों की सहायतार्थ लिख सके। प्रवीण जी को राजा साहब का नियंत्रण इसलिए मिला था कि वहाँ कोई कवितापाठ करेगा। शोषक प्रत्येकव्यक्ति को अपने विचारों और सिद्धांतों में ढालने का प्रयत्न करते हैं। जो इन स्थिर स्वार्थों का विरोध करके, स्वतंत्र साहित्य की रचना करने का दुस्साहस करता है उसे महाशय प्रवीण बनना पड़ता है।

महाशय प्रवीण, केवल प्रेमचन्द की कल्पना की उपज ही नहीं है। वे एक सामाजिक यथार्थ है। वर्ग विभाजित समाज के प्रत्येक देश में सच्चे साहित्यिकों को भूख, गरीबी, अभाव, दमन, आतंक का सामना करना पड़ता। प्रत्येक देश में सैकडों साहित्यिक भूख और अभावों का सामना करते - करते, अकाल मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं।

प्रेमचन्द ने हमको कई पात्र दिये हैं जो सभी दृष्टियों से सफलता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। कहानियों के घीसू - माधव, ईश्वरी का दोस्त, सुजान भगत आदि। किंतु वे स्वयं लेखक होने के बावजूद भी, महाशय प्रवीण के चरित्र को नहीं निभा पाये हैं। यही कुछ आलोचकों का मत है।

क्योंकि उसके चरित्र के समस्त त्याग, साहित्य की लगन, अध्यवसाय, धैर्य, संतोष के बावजूद भी वह एक व्यंग्य - सा बन कर रह जाता है। उन्होंने प्रवीण का निर्माण १९३० के आस - पास किया, उस वक्त देश में नयी ज़िन्दगी और ज्ञान की लहर फैल रही थी, उसी लहर की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द ने अपनी 'कर्मभूमि' आदि में की है। किंतु प्रवीण के चरित्र में उसका अभाव है। वह स्वयं दूसरों को प्रकाश दिखाने का दावा करता है किंतु स्वयं उसके जीवन में अंधेरा ही मालूम होता है।

प्रेमचन्द ने बडी खूबी के साथ प्रवीण के चरित्र के द्वारा वर्तमान समाज पर व्यंग्य किया है जहाँ पर साहित्य और लेखक की कोई कद्र नहीं। उसमें आदर्श लगन और तपस्या है किंतु उसका कोई मूल्य नहीं। इस कार्य में तो वे सफल हुए हैं। यह स्वयं उनके जीवन का अनुभव या जो प्रवीण की गरीबी तथा तबाही में अलबत्ता है। किंतु उनके जीवन में तो एक दृष्टिकोण भी था। वे अपने साहित्य की रचना अपने लिये नहीं करते थे बल्कि देश की रात - रात जनता केलिए। कलाकार का प्रमुख उद्देश्य प्रवीण के माध्यम से तथाकथित शिक्षित लोगों पर व्यंग्य करना था जो अपने साहित्य की कद्र भी नहीं कर सकते। साथ ही ज़मीन्दार आदि भद्र लोगों का चरित्र अवश्य हमारे सामने आता है जो अंग्रेज़ों की गुलामी के पट्टे को ही। अपने जीवन का चरम आनंद समझते हैं। दरअसल प्रेमचन्द जी लेखक प्रवीण के गुण आदि अवश्य दिखलाने किंतु उसे वह बल प्रदान नहीं कर सके जो कि लेखक में होना चाहिए। वह सहानुभूति का पात्र बनकर रह जाता है।

3 - <u>जुरमाना</u>

प्रेमचन्दजी ने ' जुरमाना ' कहानी को आदर्शपरक ढंग से लिखा है। मानव जीवन की सच्चाइयों को यह कहानी उजागर करती है। साधारण जनता की निरीहता तथा जीवन - यापन की कठिनाई भी कहानी के केन्द्रीय मुद्दे बन गये हैं। विशेषकर गाँधीजी के हृदय परिवर्तन के सिद्धांत की पुष्टि इस कहानी में मिलती है।

कहानी की नायिका अलारक्खी मुख्य पात्र है। वह सफाई के दारोगा मु.खैरात अली खाँ के उधर सफाई का काम करती थी। उसका पति हुसेनी की अवसर पाकर उसका काम कर देता। खाँ के पास सैकड़ों नौकरानियाँ हैं। मगर सदा अलारक्खी पर किसी न कारण वश जुरमाना लगा दिया जाता। उसे कभी भी वेतन पूरा नहीं मिलता। अगर वह विश्राम करते वक्त, देरी से आये या कुछ खाते वक्त दारोगा देखे तो जुरमाना पक्का हो जायेगा। किंतु किसीसे शिकायत भी नहीं कर पाती। एक दिन दूधपीती बच्ची को ज्वर आया और काम पर जाने में देरी हो गयी तो दारोगा ने आधे रुपये काट दिये।

काम केलिए आते वक्त एक दिन बच्ची को भी साथ लाया, क्योंकि वह बीमार थी। खाँ साहब के डर से अलारक्खी बच्ची से कहती है - " चुप हो जा, नहीं तो झाडू से माँरूगी, जान निकल जायेगी; अभी दारोगा दाढ़ीजार आता होगा ..... " यह कहते - कहते दारोगा आ गया। बच्ची को देखा तो उसने डाँटकर कहा - " कम करने चलती है तो एक पुच्छिल्ला साथ ले लेती है। इसे घर पर क्यों नहीं छोड़ आयी "? फिर दारोगा बच्ची के घर ले जाने को कहता है। इसके साथ यह भी कहा कि उसका पति हुसेनी लौट आये इधर झाडू लगाने केलिए भेज देना।

उस स्त्री का पति हुसेनी भी अवसर पाकर उसका काम कर देता था, लेकिन अलारक्खी की किस्मत में जुर्माना देना था। दारोगा ने अलारक्खी से पूछा कि उसे क्यों गयी दे रही थी? उसे

डर लगा कि काम से बरखास्त कर देगा। हताश अलारक्खी को हुसेनी साँत्वना देता रहा।

अखिर वेतन बाँटने का दिन आया। मगर अलारक्खी को बुलाया नहीं। वह एकदम निराशा होकर बौठी थी। तभी सहसा उसका नाम बुलाया गया और वह चौंक पड़ी। नवेली बहू की भाँति पग उठाती चली। खजाँची ने महीने का पूरा वेतन छः रुपये दिये तो उसे अत्यंत आश्चर्य हुआ। तीन सालों में कभी भी पूरा वेतन नहीं मिला है। फिर भी शंकित होकर पूछा कि ' जुर्माना नहीं '? खजाँची ने उत्तर दिया - ' नहीं '। अलारक्खी चल निकली, पर उसका मन प्रसन्न नहीं था। वह पछता रही थी कि दारोगाजी को गली क्यों दी।

इस छोटी सी कहानी में कथा का प्रवाह और विषयगत गंभीरता देख सकते हैं। दारोगा का मानसिक परिवर्तन विशेषकर स्वतंत्रता - पूर्व युग में विशेष प्रासंगिक है। क्योंकि उस समय गाँधीवादी विचारों का बोलावाला था। गाँधीजी को हृदय परिवर्तन में अटल विश्वास था। प्रेमचन्द खूब इससे प्रभावित दीखता है। वास्तव में एक यथार्थवादी कहानी की आदर्शोन्मुख परिणति इसे कह सकते हैं। लेकिन कुछ प्रसंगों पर इसे यथार्थवादी परिणति भी कहें तो अत्युक्ति नहीं। जीवन संघर्ष भी इस कहानी की विशेषता है। अपने घर संभालने केलिए समाज के साधारण लोगों को क्या नहीं सहना पडता है? यह महत्वपूर्ण प्रश्न है। शोषण का चक्र सदा चलता रहता है। शोर्षक ही इन लोगों के मालिक बन जाते हैं। ग्रामीण निरीह जनता को पंचों पर अपार विश्वास है। इसलिए दारोगा के बारे में पंचों को फरियाद सुनाना चाहते हैं। उसके अनुसार पंचों में परमेश्वर विद्यमान है। मगर साधारण लोगों के शोषण केलिए पंच भी साथ देते हैं। यही सबसे बडे दुख की बात है। कुलमिलाकर कथ्य और शिल्प की दृष्टि से ' जुरमाना ' कहानी सुंदर बन पडी है।

4 - ' रहस्य ' कहानी का सारांश

विमल प्रकाश एक सेवाश्रम का संचालक है। आश्रम को आगे चलाने केलिए धन की ज़रूरत है। उसने अखबारों में अपील निकाली। मगर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई तो वह निराश हुआ। आश्रम पर बारह हज़ार रुपये का कर्ज हुआ। इसे चुकाने केलिए छात्रों का फीस बढ़ाना पडेगा। लेकिन इससे गरीबों को शिक्षा देने का आदर्श टूट जाएगा।

मंजुलादेवी नामक स्त्री सेवाश्रम में सेवा करने केलिए आ जाती है। अखबार का विज्ञापन देखकर ही वह आयी है। वह बैंक के नौकर पति से अलग रहती है। भक्ति और पूजा में मंजुला का विश्वास है। पति इन सबसे दूर है। मंजुला अपने जीवन के सारे रहस्यों को विषय को खुलकर बता देती है। यह भी बताती है कि उसका पति भोगविलासी और स्वार्थी है और वह अथवा स्वितंत्र व्यक्तित्व खो नहीं सकती।

विमल ने मंजुला को आश्रय केलिए उचित समझा। सेवाश्रम में आनेवाले लोगों की खुशामद करने से लाभ होता है। मगर मंजुला यह नहीं कर पाती। उसे अपने आदर्श में यह कटुता का अनुभव है।

विमल का सबसे लिप्तता और बंधुत्व का भाव है। सबसे उसका व्यवहार भी शांतिपूर्ण है। विमल से मंजुला कुछ - कुछ खिंची रहती है। मंजुला को लगता है कि विमल निस्वार्थता, त्याग सब आदर्श से ऊपर का आदर्श है। आदर्श का महत्व भी वह पहूँच के बाहर हो जाने पर है। वह अगर साध्य हो जाय तो आदर्श नहीं रहेगा।

मंजुला को शक होता है कि विमल क्यों केवल उससे दूर रहता है। उसके किसी की काम पर कोई शिकायत नहीं करता था की असंतुष्टि भी प्रकट नहीं जा। आखिर सेवाश्रम के वार्षिकोत्सव का दिन आ जाता है। उत्सव का पूरा जिम्मा मंजुला पर सौंपा गया। विमल के प्रति उसके मन में जो भी दुर्भावनाएँ थी वह सब मिट गयीं। उत्सव की पूरी तैयारियाँ होने लगीं। मंजुला और विमल उत्सव की सफलता केलिए कठिन मेहनत करते रहे।

इसी बीच मंजुला को बुखार हो जाती है - विमल उससे क्षमा माँगता है। डॉक्टर को बुलाता है और सात्वना की मंजुला अनुभव करती है। मंजुला विमल को मनुष्य और अपने को काठ की पुतली जानती है। मगर विमल उसे देवी मानता है।

मंजुला रूप को आसारवस्तु और धोखा कहती है। लेकिन विमल इसी रूप व सौन्दर्य को संसार का सबसे बडा सत्य कह उठता है। रूप ने श्रषि मुनियों की परीक्षा की है। मंजुला के रूप के विरुद्ध बोलते देख विमल विक्षिप्त - सा रह जाता है। उस दिन से विमल का उत्साह ठंडा पड जाता है। वह दूसरों से मुँह छिपाते रहने लगा। आश्रम में भी कम ही वह आता है।

मंजुला विमल से घनिष्ठता चाहती है। लेकिन अपनी आत्माभिमान मान बनाये रखना भी चाहती है। एक दिन सैर करते वक्त मंजुला ने अपना इस्तीफा दे दिया। इस पर विमल अत्यंत दुखित होता है। उसका करुण वार्तालाप भी चलता है।

विमल फिर से सेवाश्रम के काम में जूट जाता है। उसे मंजुला के बारे में सोचकर पश्चाताप भी होता है।

तीन सालके बाद मसूरी के सैर को दौरान विमल ने मंजुला को देखा। साथ में एक युवक भी था। दोनों प्रेम को नशे में मस्त दीख पडा। मगर विमल उनसे नहीं मिला मगर दूसरे दिन सिनेमा हॉल में दोनों को देखा तो वह मंजुला के पास गया। मंजुला ने अभिवादन कर विमल का परिचय नवयुवक से करवाया। मंजुला ने सेवाश्रम की भी बात पूछी। उसे पत्र न लिखने पर उलाहना भी की। यह भी बताया कि पिछले साल उसका पति मर गया। मरते वक्त कर्ज ही ज़्यादा छोड़ा था। उसका स्वास्थ भी अब बिगड़ गया है। इसलिए डॉक्टर की सलाह से यहीं पहाड़ पर बिता रही है।

मंजुला विमल को कई उपदेश देती है। अप्यंत सहानुभूति भी वह दिखाती है। उसका कहना है - "मैं सब कुछ सह लूँगी; पंर आपको देवत्व के ऊँचे आसन से नीचे न गिरूँगी। आप ज्ञानी हैं, संसार के सुख कितने अनिप्य हैं, आप खूब जानते हैं। इनके प्रलोभन में न आइए। आप मनुष्य हैं। आपमें भी इच्छाएँ हैं; वासनाएँ है; लेकिन इच्छाओं पर विजय पाकर ही आपने यह ऊँचा पर पाया है। उसकी रक्षा कीजिए। और अध्यात्म ही आपकी मद्य कर सकता है। उसी साधना से आपका जीवन सात्विक होगा और मन पवित्र होगा।"

मंजुला आखिर श्रद्धा - भाव से विमल से अपने ऊपर कृपा दृष्टि रखने को कहती है। वह और कोई सेवा नहीं चाहती है। तभी वह नवयुवक जो मंजुला के साथ था, सिनेमा हॉल से बाहर आता है।

प्रेमचन्द ने एकप्रकार के रागात्मक संबंध के सूत्र से इस कहानी का ताना बाना बुन लिया है। मानव दिल के सूक्ष्म तारों को स्पंदित करने की ताकत इसमें है। एकप्रकार से कहानी मनोवैज्ञानिक भी है। मानवीय राग और संवेदन को हम कभी दबा नहीं सकते।

5 - मेरी पहली रचना

प्रेमचन्द मानव मन के कुशल चितेरे रहे हैं। ' मेरी पहली रचना ' ऐसी एक मानवीय राग और संवेदना की कहानी है कि पाठकीय संवेदना अवश्य जाग पडती। जाति - पाँति की समस्या जितनी पुरानी है उतनी ही अधुनिक भी। मानवीय रागात्मकता के आगे जाति का कोई स्थान नहीं। यही कथाकार बताना चाहते है।

उस वक्त कथाकार की उम्र लगभग तेरह साथ की थी। वह हिन्दी नहीं जानता था। उर्दू के बहुत सारे उपन्यास पढते थे। यह एक प्रकार का उन्माद बन चुका है था। उस समय के विख्यात उर्दू लेखकों की अधिकांश कृतियाँ पढ ली थीं। साथ ही तिलस्मी किस्म की चमत्कारपूर्ण रचनाएँ भी पढ ली।

उसी ज़माने में कथाकार के नाते के एक मामू उसके घर आया करता था। एक अधेड़ उम्रवाला आदमी जिसने विवाह नहीं किया था। करने की इच्छा होनेपर भी हो नहीं पा रहा था। इसी बीच वह एक चमारिन लड़की के नयन - बाणों से घायल हो गया। वह उसके यहाँ गोबर पाथने, बैलों को सानी - पानी देने, फुटकर कामों केलिए आती थी। दोनों का अनुराग गहरा होने लगा और लोगों के बीच चर्चा का विषय बन गया।

इसी बीच चमारों ने आपस में पंचायत की और लाला साहब को सबक देने का निश्चय किया।

दूसरे दिन शाम को चंपा मामू साहब के घर आयी तो मामा साहब ने द्वार अंदर से बंद कर दिया। प्रेमचंद के शब्दों में, " आज मामू साहब ने अपने प्रेम को व्यावहारिक रूप देने का निश्चय किया था। चाहे कुछ हो जाय, कुल - मरजाद रहे या जाय बाप - दादा का नाम डूबे या उतराय "।

सारे के सारे चमार लोग बाहर इकट्ठे हो गये थे। उन लोगों ने द्वार खटखटाया। सारे गाँव उधर जमा हो गये। दरवाज़ा खुला नहीं। तो बढ़ई को बुलाया और किवाड़ फाड़े गये। दरवाज़ा खुलते ही चंपा भाग चली। मामू साहब पर जूता, छड़ी, छाता, लात सभी अस्तु चल पडे। लोगों ने उसे मुर्दा हुआ समझ आखिर छोड़ दिया।

इस दुर्घटना की खबर कथाकार के उधर भी पहुँची। इस घटना की खूब कल्पना उसने की और खूब आनंद उठाया। एक महीने तक मामू हल्दी और गुड़ पीते रहे। कथाकार ने सोचा कि कभी - कभार उसे खेलने या उपन्यास पढ़ते देखे तो धमकानेवाले मामू को नीचे दिखाने का मसाला मिल गया है।

लेखक ने इस घटना के आधार पर एक नाटक लिख डाला और अपने मित्रों को सुनाया। उस कृति को मामू साहब के सिरहाने रखकर, लेखक स्कूल चला गया। शाम को वापस डर के साथ आया और देखा तो मामू साहब चारपाई पर नहीं था। मालूम हुआ कि किसी ज़रूरी काम से वह घर चला गया था। भोजन तक नहीं किया था। लेखक कमरा छान मारा। फिर भी उनका नाटक, अर्थात उनकी पहली रचना नहीं मिली।

प्रेमचन्द जी ने प्रस्तुत कहानी में मानवीय प्रेम तथा रागात्मक भावना का चित्रण किया है। कभी यह भी लगता है कि इसमें कहानीकार का आत्मकथांश शामिल है। हमें इस कहानी से पता चलता है कि आदमी कभी परिवेश की प्रेरणा के वशीभूत होकर ही गलती करता है। साथ ही जाति

- पाँति की समस्या की ओर भी इशारा किया है। उच्चवर्ग अपने को बाहर आदर्शवान दिखाना चाहता है। वास्तव में वह मुखौटा पहना हुआ है। उसके असलियत का पता तब चलता है जब वह रंगों हाथ पकड़ा जाता है। समाज के निम्नवर्ग उच्चवर्ग से नफरत करता है। इसीलिए मौका मिलने पर चमार लोग मामू साहब को पीटते हैं। एक सरल कहानी होकर भी काफी यह रोचक बन पड़ी है।

6 - कश्मीरी सेब

प्रेमचन्द की एक सरल रचना है ' कश्मीरी सेब '। वर्तमान समाज का ही चित्र इसमें अंकित है। व्यापारियों की बेईमानी पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। आजकल हर कहीं बेईमानी है। थानेदार, न्यायाधीश, सरकारी कर्मचारी आदि में कई इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं। भ्रष्टाचार की आजकल कोई गिनती नहीं। प्रेमचन्द के शब्दों में, " आदमी बेईमानी तभी करता है जब उसे अवसर मिलता है। बेईमानी का अवसर देना, चाहे वह अपने ढीलेपन से हो या सहज विश्वास से, बेईमानी में सहयोग देना है "। इसी बात का समर्थन प्रस्तुत कहानी में मिलता है।

एक बार लेखक बाज़ार में कुछ ज़रूरी चाज़ें खरीदने गया। तब उसे एक दूकानदार गुलाबी रंग के सेब सजे हुए दीख पड़े। जी ललचा उठा। सेब तो रस और स्वाद में आम के बराबर है। आज का युग विटामीन और प्रोटीन का है। उसके नाम पर आज बहुत से फल बेचते हैं। आज गाजर, आलू अमीरों का खाना बन गया है। इसप्रकार विचार करके लेखक ने आधा सेर कश्मीरी सेब माँगे। लेखक को चार सेब मिले और उसने रूमाल निकाला। लेकिन दूकानदार ने लिफाफे में बाँधकर दे दिये। सुबह हाथ मुँह धोकर नाश्ता करने गये तो एक सेब निकाला तो वह खराब था। उसने दूसरा निकाला, वह भी खराब निकला। चोथे में काल सुराख पडा था। सेब काटे तो भीतर तक वही सुराख। उसने सोच लिया कि एक यी सेब खाने लायक नहीं है।

उसने समाज के चरित्रिक पतन के बारे में विचार किया। दूकानदार ने जान बूझकर ही उसके साथ धोखा दिया था। चारों सेव खराब होना धोखेबाजी ही है। मगर इस धोखे में लेखक का भी एक दोष था। उसने सेब को रूमाल में बाँधने की सलाह ही थी। यह तो धोखा करने की प्रेरणा रही। दूकानदार ने विचार किया होगा कि आदमी चालाक नहीं होगा। इसलिए उसने लेखक के साथ बेईमानी की है।

यहाँ कथाकार ने हमारे बाज़ार के कापट्य की संस्कृति का परिचय हमें दिया है। किसी भी तरह पैसा कमाना उसका लक्ष्य है। इस स्वार्थ की पूर्ति में साधन जो भी हो सकता है। हम आजकल किसी पर भी ईमानी न कर पाने की स्थिति है। यह असल में समकालीन समाज का एक परिच्छेद ही है। भारत में सुशिक्षित आदमी की बुरे व्यवहार करते हैं। कथाकार ने आखिर पाठकों को चेतावनी भी दी कि हमें आँखें बंद करके बाज़ार में नहीं जाना चाहिए। वास्तव में यह कहानी समाज के हर क्षेत्र में फैले हुए सांस्कृतिक अपचय की ओर इशारा करती है।

7 - जीवन - सार

दरअसल जीवन - सार एक कहानी से बढ़कर प्रेचन्द की आत्मकथा का अंश ही है। प्रेमचन्द का यातनापूर्ण जीवन अपने आप में एक करुण कहानी है। बचपन की आर्थिक कठिनाइयाँ, देशप्रेम तथा राष्ट्रीय भावना का उदय, गाँधीजी का प्रभाव, गुलामी की नौकरी छोडना, अपना साहित्यिक जीवन आदि से जुडे हुए कई प्रसंग प्रस्तुत रचना में आ गये हैं।

प्रेमचन्द का कहना है, "मेरा जीवन सपाट समतल मैदान है, जिसमें कहीं - कहीं गढ़े तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाडों की सैर के शौकीन हैं उन्हें तो यहाँ निराशा ही होगी।" प्रेमचन्द का जन्म सन् 1980 में हुआ था। पिता डाकखाने में क्लर्क थे, माता मरीज़। पन्द्रह साल की उम्र में लेखक का विवाह कर दिया और विवाह के साल ही भर बाद पिता का देहांत हो गया। नवें दर्जे में पढनेवाले प्रेमचन्द केलिए बडा बोझ सिर पर आ गया। घर में उनकी पत्नी, विमाता उनके दो बालक थे और आमदनी एक पैसे की नहीं। प्रेमचन्द को वकील बनने और एम.ए पास करने की इच्छा थी। मगर लेखक के ही शब्दों में, "पाँव में लोहे की नहीं अष्टधातु की बेडियाँ थीं और मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर"।

प्रेमचन्द काशी के क्वींस कालेज में पढते थे। जूते, कपडे आदि भी नहीं के बराबर है। फीस माफ कर दी थी। एक लडके को पढ़ाकर (ट्यूशन) कुछ पैसे मिलते। मेट्रिकुलेशन दूसरे दर्जे में पास हुआ तो क्वींस कालेज में भरती होने की आशा न रही। क्योंकि प्रथम श्रेणीवालों को ही फीस माफ कर दी जाती। प्रिंसिपल रिचार्डसन से बात हूई। फायदा नहीं हुआ। शायद कोई सिफारिश लाते तो कुछ फायदा होगा।

आखिर कालेज की प्रबंध कारिणी सला के सदस्य ठाकुर इन्द्रनारायण सिंह से सिफारिश मिली। ज्वर आने की वजह एक महीने के बाद ही प्रिंसिपल से मिल पाये। प्रिंसिपल ने पूछा तो प्रेमचन्द ने बताया कि पैलपिटेशन आफ हार्ट की बीमारी थी। इसलिए इतने दिन आ न पाये। प्रिंसिपल को ज़रा दया आयी। उन्होंने प्रवेश के फार्म पर लिखा कि 'इसकी योग्यता की जाँच' आखिर बीजगणित की परीक्षा में वे फेल हो गये और प्रोफेसर ने फार्म पर ' असंतोषजनक ' लिखा। प्रेमचन्द निराश होकर घर वापस चला गया। प्रिंसिपल के पास नहीं गये। प्रेमचन्द ने लिखा है - "गणित पेरे लिए गौरीशंकर की चोटी थी। कभी उस पर न चढ़ सका"।

उस समय एक वकील साहब के लड़के को पढाना शुरू कर दिया। इसी दौरान पं.रतननाथ का ' फसाना - ए - आजाद ', देवकीनन्दन स्त्री की 'चन्दकान्ता संतति' आदि कई उपन्यास पढे। कई अनुवाद भी पढने का मौका मिला। आर्थिक संकट के कारण कभी पैसा उधार लेना भी पडता। जाडों के दिन में प्रेमचन्द ने एक महाजन से उधार लेने गये। लेकिन उसने नहीं दिया या तो लेखक संकोचवश नहीं माँग सके। आखिर शाम को उन्होंने चक्रवर्ती गणित की कुंजी बेचने को गया। तभी एक सज्जन वहाँ मिले। वे एक स्कूल के हेडमास्टर थे। उन्होंने अठारह रुपये के वेतन पर सहाकारी अध्यापक का काम दे दिया। प्रेमचन्द इस पर लिखते हैं - " अठारह ऊँची - से ऊँची उड़ान से भी ऊपर थे। मैं दूसरे दिन हेडमास्टर साहब से मिलने का वादा करके चला, तो पाँव ज़मीन पर न पड़ते थे"।

प्रेमचन्द जी अपने साहित्यिक जीवन का परिचय देते हुए कहते हैं कि 1907 में उन्होंने गल्पें लिखनी शुरू की थीं। उपन्यास 1901 में लिखना शुरू किया। 1902 में एक उपन्यास निकला। उनकी पहली कहानी ' संसार का सबसे अन्मोल सन् ' 1907 में ' ज़माना ' पत्रिका में छपी थी। 1909 में पाच कहानियों का संग्रह ' सोज़ेवतन ' छपा।

उस समय प्रेमचन्द शिक्षा विभाग में सब डिप्टी इंस्पेक्टर थे और हमीरपुर के जिले में नियुक्त थे। जाड़ों के दिन में जिलाधीश से मिलने का आदेश मिला। बैलगाडी से रातों रात उनसे आ मिले तो साहब के सामने ' सोजे वतन ' की प्रति रखी हुई थी। उस समय वे ' नवाबराय ' नाम

से लिखते थे। अंग्रेज़ी खुफिया पुलिस इस लेखक की खोज में थी। साहब ने बताया कि इन कहानियों में राज्यद्रोह है। अंग्रेज़ों की उदारता दिखाने केलिए यह भी बताया कि अगर तुम मुगलों के राज्य में होता तो इस अपराध केलिए कठिन सज़ा मिलती। अंत में प्रेमचन्द से प्रस्तुत पुस्तक की सारी प्रतियाँ हवाले करने को तथा आगे बिना अनुमति के कुछ भी न लिखने को कहा गया।

प्रेमचन्द जब हमीरपुर में थे तब वे पेचिश की बीमारी से परेशान थे। कई दवाएँ लेने पर भी रोग शांत न हुआ। संयम के साथ चार - पाँच मील टहलने जाता, व्यायाम करता, पथ्य से भोजन करता, कोई - न - कोई औषधि भी खाया करता, किंतु पेचिश टलने का नाम न लेती थी, और देह भी धुलती जाती थी।

बाद में बस्ती जिले में उनका तबादला हुआ वहीं सौभाग्य से उनका परिचय पं.द्विवेदी से हुआ, वे डोमरियागंज में तहसीलदार थे। उनसे प्रेमचन्द की साहित्यिक चर्चा भी चलती थी। पेचिश से वे अधिक परेशान रहे। उनकी कई गल्पें उस समय ' सरस्वती ' में छपीं। दौरे की इस नौकरी को छोड़ गोरखपुर में हाईस्कूल का अध्यापक बने। वहाँ महावीर प्रसाद जी पोद्धार से उनका परिचय हुआ। पोद्धार की प्रेरणा से 'सेवासदन' लिखा। उससे उत्साहित होकर प्रेमाश्रम भी लिखा। बीच में वे प्राइवेट बी.ए.भी पास हो गये।

कई दिन तक वे पेचिश केलिए जल चिकित्सा की। फिर सबसे परेशान होकर वह चिकित्सा भी बंद कर दी। एक दिन संध्या समय उर्दू बाज़ार में दशरथप्रसाद द्विवेदी जो ' स्वदेश ' के संपादक थे, उससे भेंट हुई तो द्विवेदी ने उनसे बीमारी का जिक्र किया तो प्रेमचन्द नराज़ भी हो गये थे।

1921 के समय असहयोग आन्दोलन ज़ोरों पर था। जालियाँवाला बाग हत्याकाँड हो चुका था। उन्हीं दिनों गोरखपुर दौरे पर गाँधीजी आये। उनके दर्शन से प्रेमचन्द प्रभावित हुए ओर बीस साल की नौकरी से इस्तीफा दे दिया प्रेमचन्द देश प्रेम से संबंधित कार्य से भी जुड गये।

काशी में चले जाने के बाद वे पूर्णतः साहित्य - सेवा में लगे रहे। उनके अनुसार, "गुलामी से मुक्त होते ही मैं नौ साल के जीर्ण रोग से मुक्त हो गया"। प्रेमचन्दजी अंत में लिखते हैं कि अब मेरा दृढ विश्वास है कि भगवान् की जो इच्छा होती है वही होता है, और मनुष्य का उद्योग भी इच्छा के बिना सफल नहीं होता।

प्रस्तुत आत्मकथापरक कहानी से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द का जीवन कितना यातनामय रहा था। किसप्रकार एक लेखक अपने जीवन - संघर्षों को झेलते हुए महान बन जाता है इसका स्पष्ट दृष्टांत यहाँ मिलता है। आजकल प्रेमचन्द की प्रतष्ठा विश्व साहित्यकारों में है। मनुष्य को हमेशा आशावादी बनने का संदेश भी यहाँ मिलता है। कर्म की श्रेष्ठता सबसे महत्वपूर्ण है। तद्युगीन साहित्यिक राजनीतिक परिदृश्य भी लेखक ने अंकित किया है। वास्तव में यह आत्मकथांश एक महान लेखक के त्यागमय जीवन की मनोरम कहानी ही है।

8 - दो बहनें

प्रेमचन्द ने प्रस्तुत कहानी में पारिवारिक जीवन का सच्चा चित्र खींचा है। स्त्रियों की महत्वाकांक्षाओं तथा कमज़ोरियों का चित्रण की यहाँ किया। पूरी कहानी में आदर्श और यथार्थ का सम्मिश्रण मिलता है।

रूपकुमारी और रामकुमारी दोनों बहनें हैं। दो साल बाद दोनों तीसरे एक नातेदार के घर मिल जाती है। रामकुमारी छोटी बहन है। उसे सज धज कर चलने का शौक है। उसके पति के घरवाले अमीर है। इसलिए पति का वह सदा बडप्पन करती रहती। बडी बहन रूपकुमारी को छोटी बहन पर ईर्ष्या होती है। रामकुमारी का पति एजेंट का काम करता है। इसे ठग - विद्या कहकर रूपकुमारी परिहास करती। रामकुमारी के मत में वकील और बैरस्टर सबको धोखा देनेवाले हैं। जिनके पास पैसा होती है उसीकी पूजा होती है। जो अभागे है, अयोग्य है, या भीरू है, वे आत्मा और सदाचार की दुहाई देख अपने आँसू पोंछते हैं।

रामकुमारी का बडप्पन सुन्दर बडी बहन को उसके घर जाकर असलियत जानने की इच्छा होती है। दो - चार दिन अपने घर आकर रहने का निमंत्रण भी रामकुमारी देती है। सहसा उसका पति गुरुसेवक कार ले आता है। रूपकुमारी घर जाने का निमंत्रण तत्काल अस्वीकार करती है। आखिर दोनों कार में बैठीं। रामकुमारी घर पहूँचने पर उतर गयी। रूप को छोड़ने केलिए गुरुसेवक आगे बढा। वह अपने एजेंट के काम तथा अपनी प्रगति के बारे में रूपकुमारी से बात करता है। तब सुनकर वह अचंभित रह जाती है।

अपने घर पहूँच तो पति उमानाथ द्वार पे टहल रहा था। लालटेन टिमटिमा रहा था। जोर से गुरुसेवक को घर आने का नियंत्रण रूपकुमारी नहीं देती है। उसे अपना घर कब्रिस्तान जैसा लगा। उधर खाना - वाना कुछ पकाया नहीं था। वह अपने पति और बच्चों पर टूट पडती है। उधर उसके बिगाड़ जाने का कोई वजह उमानाथ देख नहीं पाया। उसने सोचा कि सहानुभूतिपरक तथा कमखर्चीले स्वभाववाली रूप में इतना भारी परिवर्तन कैसे आ गया। अब गुस्सा भी आने लगा है। अपने पति से वह कहती, "तुम्हारे साथ ज़िन्दगी खराब हो गयी। संसार में ऐसे मर्द भी है, जो स्त्री केलिए आसमान के तारे तोड़ लाते हैं"। तुमसे कम पड़े गुरुसेवक माह में 500 रुपये पाता है मगर तुम सिर्फ ७५ रु। वाग्बाणों से उमानाथ चुप्पी साध, सुनता रहा, कोई जवाब नहीं दिया। गुरुसेवक के वेतन के विषय में पता लगाने का निश्चय उमानाथ ने किया।

एक दिन उमानाथ गुरुसेवक को मिले अपने घर आता है। वह देख पत्नी को गुस्सा आता है। वह गुरुसेवक शराब के नशे में था। नशे में वह सारी सच्चाइयाँ खुलकर बता देता है। वह किरायेदार घर में रहता है। वह किसी मालिक का खुफिया एजेन्ट है। वह चोरी करके कोकेन बेचता है। उसके मत में, "जो आत्मा और सदाचार के उपासक है उन्हें कुबेर लात मारता है"। अगर हमें महात्मा या धर्मभूषण की उपाधि पाना है तो वह स्वार्थ और पैसे से ही संभव है। उसकी राय में यहाँ जो आदमी आँखों में धूल झोंक सके, वही सफल है। ये सारी बातें सुनकर रूपकुमारी का पश्चाताप होता है। उसे अपने पति पर सहानुभूति और अभिमान महसूस हुआ। साथ ही अपनी बहिन दुलारी पर अपार सहानुभूति और दया की भावना उमड़ पडती है।

वास्तव में प्रेमचन्द ने प्रस्तुत कहानी में आदर्श से बढ़कर यथार्थ को प्रमुखता की है। साधारण लोगों की ज़िन्दगी का यथार्थ चित्र यहाँ मिलता है। झूठे आडंबरों तथा दिखावों पर एक

चेतावनी है यह कहानी। कभी कभी स्त्रियों की ईर्ष्या, लालच तथा महत्वाकांक्षा की परिणति से पारिवारिक विघटन भी हो सकता है। बाहरी दिखावे में सदाचार तथा आदमी की असलियत कोई आँक न सकता है। पैसे की पूजा करने की संस्कृति का विरोध प्रेमचन्द ने हमेशा किया है। आत्मा और सदाचार की उच्चतापर कथाकार बल देते हैं। देश व आराम के मोह में पड़कर पल भर के कार्यलाभ केलिए पति को, बच्चों को या सगे संबंधियों को डाँटना आजकल की एक प्रवृत्ति बन गयी है। यह की हमें पता चलता है कि साधारण शांत परिवार में गृहकलह का बीज कैसे बो दिया जाता है। अभाव की ज़िन्दगी में भी झूठे अहं को सर्वोपरि मानने में लोगों को संतुष्टि है। रूपकुमारी गुरुसेवक से कहती है - "पिंजडे में कठघरे में रहने से अच्छा है। पिंजड़े में निरीह पक्षी रहते हैं, कठघरा तो घातक जंतुओं का ही निवास स्थान है"। कहानी के विकास के चरणों में हम पात्रों के मानसिक परिवर्तन देख सकते हैं। प्रेमचन्द यह भी बताते हैं कि अनुभवही सच्चा गुरु है। किसी के कहने से बढकर अनुभूत सत्य सबसे महत्वपूर्ण है।

9 - आहुति

प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियों में ' आहुति ' का विशिष्ट स्थान है। यह एक प्रकार से आदर्शवादी कहानी है। इसमें यथार्थ का सम्मिश्रण कथाकार ने किया है। स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में लिखी गयी इस कहानी में गहन देशप्रेम की भावना देख सकते हैं। गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित प्रस्तुत कहानी में प्रेमचन्द यह दिखाना चाहते हैं कि व्यक्ति केलिए अपनी आत्मा का आदर्श ही सबसे प्रमुख होना चाहिए।

' आहुति ' कहानी के प्रमुख पात्र हैं - आनंद, विश्वंभर और रूपमणि। आनंद और विश्वंभर दोनों ही यूनिवार्सिटी के विद्यार्थी थे। आनंद के हिस्से में लक्ष्मी भी पड़ी थी, सरस्वती भी, विश्वंभर फूटी तकदीर लेकर आया था। प्रोफेसरों ने दया करके एक छोटा - सा वजीफा दे दिया था। बस, यही उसकी जीविका थी। रूपमणि भी साल भर पहले उन्हीं की समकक्ष थी। पर स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण इस साल उसने कालेज छोड़ दिया था। दोनों युवक कभी - कभी उससे मिलने आते रहते थे। आनन्द आता था उसका हृदय लेने केलिए, विशंभर आता था, यों ही। जी पढ़ने में नहीं लगाता या घबड़ाता, तो उसके पास आ बैठता था। शायद उससे अपनी विपत्ति - कथा कहकर उसका चित्र कुछ शांत हो जाता था। आनंद के पास उसकेलिए सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं था। वह उसे फटकारता था, जलील करता था और बेवकूफ बनाता था। आनंद का उस पर मानसिक आधिपत्य था।

विशंभर देश प्रेम की भावना से प्रेरित था। उसने आनंद को एक पत्र भेजा और लिखा कि वह परीक्षा सब छोड़, अपने को देश केलिए आहुति करने जा रहा है। आनंद और रूपमणि के बीच बातचीत चलती है। रूपमणि के मन में गाँधीजी की सूरत आ जाती। उसमं देश प्रेम जाग उठता है। किंतु आनंद पर इसका कोई असर नहीं होता।

रूपमणि स्वराज्य भवन पहूँचती है। वहाँ स्वयंसेवक कई तरह के कार्यक्रम बना रहे थे। रूपमणि वहाँ से विश्वंभर को ढूँढ रही थी। आखिर रेलवे स्टेशन पर विशंभर मिल जाता है। वह रूपमणि से कहता कि स्वराज्य ही उसकेलिए इस ज़िन्दगी से बेहत्तर है। गाडी आती है और वह चल पडता।

इधर रुपमणि में बडा मानसिक परिवर्तन हो जाता। उसने अपने कमरे में आनंद के बदले विश्वंभर का पुराना फोटो रख दिया। विश्वंभर का उस पर गहरा प्रभाव पडा। वह विलासी जीवन छोडने लगी। सूत कातने लगी। हर दिन स्वराज्य भवन जाने लगी।

अगली बार जब आनंद और रुपमणि मिले तो दोनों में डिग्री और देशप्रेम पर विवाद चला। आनंद ज़मीन्दारों अमीरों, वकील - व्यापारियों के पक्ष में बोलनेवाला था। लेकिन रूपमणि स्वराज्य तथा यहाँ के साधारण किसान मज़दूरों के पक्ष में बोलने लगा। आनंद के शब्दों में, " शिक्षा और संपत्ति का प्रभुत्व हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा"। मगर रूपमणि के अनुसार, "कम से कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जायँ। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती है, जहाँ कम - से - कम विषमता का आश्रय न मिल सके"।

काँग्रेज़ के बुलेटिन के समाचार से पता चलता है कि विश्वंभर, पुलिस द्वारा किसान सभा से पकडा गया और दो साल की सज़ा भी तय है। रूपमणि विश्वंभर के दीपक को आगे बढ़ाने का दृढ़ निश्चय करती है। अम्मा - दादा की अनुमति के बारे में जब आनंद पूछता है तो वह जवाब देती है - "सिद्धांत के विषय में अपनी आत्मा का आदेश ही सर्वोपरि होता है"। आनंद लड़खड़ता हुआ चला जाता है।

प्रस्तुत कहानी स्वंतंत्रता संग्रम की पृष्ठभूमि में लिखी गयी एक आदर्शवादी कहानी है। लेकिन प्रेमचन्द ने पूरी कहानी में यथार्थ का कुशल समावेश किया है। देशप्रेम की गहरी भावना इस कहानी में स्पष्ट है। पराधीन देश में कायम दो वर्गों भी ओर की संकेत मिलता है। एक अमीर व प्रभु वर्ग का पक्षधर और दूसरा गरीबों का। देशप्रेमियों का लक्ष्यबोध और अटल आदर्श का परिचय विश्वंभर से मिल जाता है। स्वतंत्रता संग्रम के समय कई छात्राओं ने शिक्षा से बढ़कर स्वराज्य को महत्व दिल है और पढ़ाई छोडकर देश की स्वतंत्रता केलिए बलिदान करने केलिए उतावले हुए थे। रूपमणि से गाँधी का हृदय परिवर्तनवाला सिद्धांत स्पष्ट हो जाता है। स्वराज्य से गाँधीजी का तात्पर्य भी रूपमणि के शब्दों से स्पष्ट है। वास्तव में प्रेमचन्द यही स्पष्ट करते हैं कि मानव चरित्र के अनुभव से बडी डिग्री नहीं। देश सेवा हर नागरिक का प्रथम कर्तव्य है। परंतंत्र देश में स्वराज्य केलिए आहुति करना जीवन की महान उपलब्धि है। अपनी जन्म भूमि की मुक्ति केलिए विश्वंभर अपनी शिक्षा, भविष्य, घर तथा पूरी ज़िन्दगी की आहुति करता है। यह एक आदर्श नमूना है। रूपमणि भी अपना विलास त्यागती है। प्रेमचंद की देश प्रेम संबंधित कई कहानियाँ मिलती हैं। 'होली का उपहार' में की देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना है। प्रेमचन्द यही हमें बतानां चाहते हैं कि मानव केलिए अपनी आत्मा का आदर्श ही सर्वोपरि होना चाहिए। सरल शैली में लिखी इस कहानी का कथ्य काफी प्रासंगिक तथा प्रेरणापद है।

10 - होली का उपहार

हिन्दी के अमर कथासम्राट प्रेमचन्द ने इस कहानी में राष्ट्र प्रेम की भावना को अभिव्यक्त किया है। स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में यह कहानी लिखी गयी है। अहिंसात्मक आन्दोलन की ताकत कहानिकार ने यहाँ दिखायी है। गाँधीवादी विचारों का प्रभाव इस कहानी में स्पष्ट है।

मैकूलाल मित्र आमरकांत के घर शतरंज खेलने जाता है तो मालूम हुआ कि अमरकांत कहीं बाहर जाने की तैयारी में है। अमरकांत पहली बार ससुराल जा रहा है। इस घबराहट में वह पड़ा रहा था। जाते वक्त मैकूलाल ने उससे कहा कि कोई न कोई उपहार लेना ठीक रहेगा। कई

देर वह इस उलझन में पड़ा रहा कि कौन सी चीज़ खरीदी जाय? खर्च की उसे ज़्यादा है। पैसा अपने दादा को भी भेजना है। इसलिए वह सस्ती चीज़ सोचता रहा।

उसी वक्त एक पारसी महिला एक नये फैशन की साड़ी पहने हुए मोटर पर निकल गयी। अमरकांत ने आखिर वही साड़ी खरीदने का निश्चय कर लिया। वह साड़ी हाशिम की दूकान में ही मिल सकती है। लेकिन समस्या यह थी कि उसी दूकान के सामने पिकेटिंग चल रही है। इसलिए उसे वहाँ तक जाने की हिम्मत नहीं हुई। स्वयंसेवकों का वहाँ पहरा है। उन्हीं की धरना लगी है।

अमरकांत दबे पाँव हाशिम की दूकान के सामने पहूँचा। स्वयंसेवकों की धरना वहीं थी, साथ ही देखनेवालों की भीड़ भी। दो तीन बार उसने कलेजा मज़बूत किया। आखिर साड़ी केलिए पागल हो उसने पिछवाड़े के द्वार से जाने का निश्चय किया। अमरकांत दूकान के अंदर घुस पडा। एक साडी खरीद बाहर आया तो तीन स्वयंसेवक आ पहूँचे थे। वह दुविधा में पड गया और अंधाधुंध में भागता चला गया। दुर्भाग्य वश वह एक लाठी टेकती आती बुढिया स्त्री से टकरा गया। बुढ़िया गिर पडी और गालियाँ देने लगी। अमरकांत के पाँव आगे न जा सके। बुढिया को उठाया और उससे क्षमा माँग रहे थे कि तीनों स्वयंसेवकों ने पीछे सो आकर उन्हें घेर लिया। एक स्वयंसेवक ने साड़ी के पैकेट पर हाथ रखते हुए कहा -बिल्लती कपड़ा ले जाए का हिक्म नहीं ना। तीसरे आदमी ने कहा कि देश में आग लगी है, और इनका मन बिल्लाती माल से नहीं भरा।

स्वयंसेवकों ने उसे जाने नहीं दिया। इतने में बीसों आदमी आ गये। कोई बीच में कहता - "यह लोग अपने को शिक्षित कहते हैं। छिः इस दूकान पर से रोज़ दस - पाँच आदमी गिरफ्तार होते हैं, पर आपको इसकी क्या परवाह"।

अब अमरकांत को मैकूलाल पर गुस्सा आने लगा। क्योंकि वही उससे सौगत लेने को कहा था। कई देर स्वयंसेवकों की टिप्पणियों के बाद छीन झपट शुरु हो गया। बीच में किसीने उसकी साड़ी छीन ली। अमरकांत ने पुलिस को बुलवाने की धमकी दी। साहस एक युवती खद्दर साड़ी पहने वहाँ आ निकली। वह सहानुभूति के साथ कहती तो अमरकांत उससे शिकायल करने लगा। युवति ने सात्वना दी। आखिर वह कपडा वापस दिलवाती है और सरल निंदा भाव के साथ अमरकांत से कहती - जब आप देख रहे हैं कि वहाँ हमारे ऊपर कितना अत्याचार हो रहा है, फिर भी आप न माने। जो लोग समझकर भी नहीं समझते, उन्हें कैसे कोई समझाये! "स्त्री के कथन से अमरकांत लज्जित हुआ। और फिर उसने जेब से दियासलाई निकाली और वहीं उस स्त्री सुखदा के सामने उस साड़ी को जला दिया। इसके बाद प्रायश्चित करने केलिए वह स्वयं धरना केलिए चला गया"।

कथाकार कह रहे हैं - "आज होली है, मगर आज़ादी के मतवालों केलिए न होली है, न बसंत"। तब की खद्दर का कुर्ता और धोती पहनकर लोग हाथ में तिरंग झंडा लिये खडे हुए हैं। स्वतंत्रता संग्राम के ज़ोर में इन देशप्रेमियों ने सुखों का होम चढाया है। इसके बीच में पुलिस की एक लारी आकर सब स्वयं सेवकों को गिरफ्तार कर देती है। वहाँ 'वंदे मातरम' की ध्वनि प्रतिध्वनित हुई। स्वयंसेवक मुस्कुराते हुए लारी में जा बैठे। अमरकांत को सुखदा ने पुष्पमाला पहनायी। आँखों से स्नेह और गर्व की दो बूँदें टपक पडी। लारी चली गयी। वही होली का आनंद मिलन था।

प्रस्तुत कहानी में स्वदेशी आन्दोलन को कथाकार ने उजागर किया है। विलायती कपड़ों का बहिष्कार उनमें से एक है। स्वतंत्रता संग्राम में लाखों - करोड़ों नौजवानों और देशप्रेमियों ने भाग लिया था। इसमें एक भारतीय नारी का त्यागमय व आदर्श पूर्ण सेवोन्मुखी जीवन की झाँकि की मिलती है। सुदर्शन की कहानी 'हार की जीत' में लगभग यही विषय हमें मिलता है। देशप्रेम तथा गहन राष्ट्रीय भावना को कहानी के द्वारा प्रदार्शित करने की हिम्मत प्रेमचन्द ने परतंत्र भारत में दिखाया है। यह सराहनीय बात है। अमरकांत विलायती कपडे को जला देता है। यह असल में गाँधीजी के हृदय परिवर्तन सिद्धांत का प्रभाव है। अहिंसात्मक आन्दोलन की ताकत भी यहाँ स्पष्ट होती है। उस समय के वीर देशप्रेमियों ने जिस समझौता रहित संग्रम किया है उसी का सुपरिणाम हम भोग रहे हैं। स्वतंत्रता की लड़ाई में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगादान की इस कहानी से स्पष्ट होता है। स्त्री का जो चरित्र दिखाया है वह काफी आदर्शपरक है। प्रस्तुत कहानी से प्रेमचन्द की युग प्रतिबद्धता भी स्पष्ट होती है।

11 - मोटेराम शास्त्री - चरित्रगत विशेषताएँ

प्रेमचन्द ने मोटेराम शास्त्री के माध्यम से सामान्तवादी भारत के पुरोहित का असली रूप दिखाया है। यह अपने आपको भारत की समस्त संस्कृतिक - दार्शनिक विरासत के स्वामी समझते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज भी इनका हस्तक्षेप है। विवाह, पुत्र, जन्म, रामी, श्राद्ध, मन्दिर, मठ, बडे - बड तीर्थ स्थान, सब पर इन्हीं का एकछत्र राज्य है। इनकी एक बिरादरी है, जिसमें कोई बडा कोई छोटा। कोई केवल मोटेराम शास्त्री ही है, कोई दातादीन, कोई महंत रामदास और महंत ज़मीन्दार आदि। कोई धर्म का नाम लेकर शोषण करते हैं और कोई शोषण में धर्म का नाम लेकर सहायता करते हैं। सदियों से ये लोग सामंतवादी शोषण को एक दार्शनिक धार्मिक आवरण देते आये हैं। अन्याय, शोषण को कायम रखते का एक तरीका तो साल - है। साथ में दमन और हाथियारों की शक्ति और फौज है। क्या यह शक्ति मनुष्य के शरीर को जीत सकती है? उसको आंतकित करके भय में डालकर अपनी बात मनवा सकती है? नहीं, शोषण आखिर भय से नहीं चल सकता। उसके लिये शोषितों के मन को जीतना पडता है। यह कार्य यह पुरोहित पूरा करते हैं। गाँव - गाँव में मोटेराम शास्त्री फैले हुए हैं जो पीढ़ी पर पीढ़ी से जनता के भोले मन पर बैठे हुए हैं, जो अपने कर्मकांड, मंत्र, अनुष्ठानों से उसके मस्तिष्क को जकड़े हुए हैं। वे अज्ञान के दुर्ग की भाँति समाज में खड़े हैं। ज्ञान की प्रगति के लिए इसको नष्ट करना ही पडेगा।

यह कोई हमारे देश की ही विशेषता नहीं है। प्रत्येक जाति और राष्ट्र के इतिहास में पुरोहित हुआ करते हैं। यूरोप में तो सदियों तक इनका शासन रहा है। इतिहास में इनकी प्रवृत्ति बढ़ाते हुए ज्ञान की गति को रोककर उसको फुसलाने की रही है। विकास और प्रगति पर रोक लगाकर शोषण की एक स्थिर सत्ता को स्वामी बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसकेलिए इसके अनंत और अनादि नियमों और दर्शनों की रचना होती है। हमारे देश में सामंतवादी शोषण की सत्ता को आदर्श के रूप में पेश करने केलिए ब्राह्मण परोहितों का जन्म हुआ। यही अक्सर कहा जाता है। दार्शनिक धार्मिक तरीके से शोषण का समर्थन करने केलिए। तथा शोषित जनता के मन पर अधिकार करने केलिए। आज पुरोहित मोटेराम शास्त्री अपना कार्य कर रहे हैं। किंतु बीते हुए काल और आज के युगों का अंतर आ गया है। कल इनका जन्म हुआ था, इनमें जवानी थी। यौवन की स्फुर्ति और ताजगी! दास - प्रथा को नष्ट करके जन्म सामंतवाद में भी ताजगी और नयी

CUP/8413/11/500/SDE — 5

ज़िन्दगी थी। उस वक्त जो दार्शनिक विवेचन हुए, उससे विश्व ज्ञान में वृद्धि हो गयी। किंतु सदियों के बाद सामंतवाद की जवानी खतम हो गयी, उसके विकास की शक्ति खत्म हो गयी। वह खलास, स्खलित हो गया। किंतु नष्ट नहीं हुआ। सड़ता रहा। फौज हथियारों और पुरोहितों की सहायता से जीवित रही। सामंतवाद की गति के साथ पुरोहितों के दर्शन और धर्म की गति भी रुक गयी। गति नहीं ज्ञान जड़ ' डोगमा ' बन जाता है। उसके ज्ञान और बुद्धि में भले ही विकास रुक गया किंतु उनका शरीर मोटा होता गया। उसने मोटेराम शास्त्री का रूप धारण कर लिया।

मक्कारी, धूर्तता, छल - कपट, पाखंड, आडंबर, पूजा - पाठ, मंत्र - जाप, श्राद्ध, अनुष्ठान। दो हज़ार से भी अधिक वर्षों पहले भी इनका यही हाल होने लगा था। विचारों में जब तक स्वयं की शक्ति रहती है तो उसे किसी बाह्य हथियारों के ताकत की आवश्यकता नहीं रहती। किंतु मंत्रों और डोगमों में इतनी शक्ति नहीं और इसिलिए इनको कायम रखने केलिए खूंरेज़ी का सूत्रपात हुआ। यूरोप में भी और हमारे देश में भी। ब्राह्मणवाद के इस अंतक और पाखंडों के विरुद्ध ही बुद्ध और महावीर ने विद्रोह किये। उन्होंने कुछ नये विचार अवश्य दिये किंतु राजनैतिक रूप से सामंतवादी शोषण के दायरे के अंदर ही। इसलिए कुछ सदियों के बाद यह विचार थी सामंतवाद के दोजख में खो गये। यह भी डोगमों में परिवर्तित हो गये। और इसलिए देश की जनता के मन पर विशेषतया मध्यवर्गीय जनता पर, चाहे वह किसी भी धर्म को माननेवाले क्यों न हों, आज भी मोटेराम शास्त्री का असर है।

साम्राज्यवाद ने मरते हुए सामंतवाद को अपने साये में ले लिया। इसने सामंतवादी शोषण और इसलिए मोटेराम शास्त्री की भी ज़िन्दा रहने केलिए भी सहायता की। वे स्वयं उनके दलन, शोषण और जुल्म के अमलदार बन गये। अंग्रेज़ी राज्य में वाइसराय की सवारियाँ निकली तो पीड़ित जनता उसके खिलाफ प्रदर्शन करती। उस वक्त जब और कोई बस नहीं चलता, फौज, पुलिस, कानून सभी युक्तियाँ बेकाम रहती तो मोटेराम शास्त्री को याद किया जाता। पंडित जी अन्न - जल त्यागने का ढोंग करते। धार्मिक जनता पर इसका काफी असर पड़ता। वे कॉंग्रेस को - जो उस वक्त साम्राज्यविरोधी - कहते, हम आपके सब हुकम मानने को तैयार है, लेकिन धर्म के मामले में हम आप लोगों का नेतृत्व नहीं स्वीकार कर सकते। जब एक विद्वान, कुलीन, धर्मनिष्ठ ब्राह्मण, हमारे ऊपर अन्न - जल त्याग कर रहा है, तब क्यों कर भोजन करके टाँग फैलाकर सोयें? कहीं मर गया तो भगवान के सामने क्या जवाब देंगे? यह मोटेराम के चरित्र का बल उतना नहीं है जितना जनता के धार्मिक संस्कारों का। अभी तक हमारी जनता साम्राज्यवादी शासन समाप्त हो जाने के बाद आज भी परंपरागत धार्मिक - दार्शनिक डोगमों में जकड़ी है। इन विचारों ने सदियों तक इनके मन में असर करते - करते एक स्थिति जन्य क्रिया का रूप धारण कर लिया है। संघर्ष के दौरान में आज ये क्रियायों टूट रही हैं, किंतु संपूर्णतया तो संमंतवादी स्थितियों के नष्ट होने के बाद के ही समान्य होंगी। इन्हीं क्रियाओं के कारण मोटेराम शास्त्री का सम्मान और प्रभाव है। इनको ही मजबूत करने केलिये, मोटेराम शास्त्री मौजूद भी है।

मोटेराम शास्त्री, परंपरागात दार्शनिक - धार्मिक - नैतिक आचार - विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। नये ज्ञान और जनता की नयी ज़िन्दगी केलिए संघर्ष, आये दिन इन ढोंगियों से टकरा रहा है। इस संघर्ष में इनकी कलई खुलती है और शक्ति नहीं है। केवल पाखंड और आडंबर है। इसीलिए मोटेराम शास्त्री के चरित्र में भी कोई बल नहीं है। उदर फैल गया है, तन फूल गया है, किंतु दिल और दिमाग पिचक गये हैं। वह स्वयं जानता है कि वह पाखंड कर रहा है। मंत्रों, अनुष्ठानों का स्वयं उनके जीवन में कोई स्थान नहीं है। इसीलिए इन पाखडों के पीछे आत्मा का

कोई बल नहीं, केवल उदर का बल है। स्वयं शास्त्री अपनी डायरी में लिखता हा, " पूजा के बाद मध्याह्न तीसरे पहर और रात को चार बार तर माल चकाचक चाहिए, जिसमें लड्डू, हलवा, मलाई, बादाम, कलाकन्द आदि का प्राधान्य हो "। इनकी चकाचक माल की सुख इतनी बढ़ गयी है कि उसने एक विशाल तौंद का विराट् रूप धारण कर लिया है। इसीलिए इसके सारे मंत्र, अनुष्ठान मिठाई देख कर मोम की भाँति पिघल कर मुँह से पानी के रूप में बहने लगते हैं। इसके फैलते हुए उदर को देखकर यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि पंडित मोटेराम शास्त्री शीघ्र ही अजीर्ण रोग से इस संसार के माया जाल से मुक्त हो जायेंगे।

यही प्रेमचन्दजी की खूबी है कि मोटेराम शास्त्री के चरित्र को उन्होंने हमारे सामने रखा, उसका असर भी बताया, उनके पाखंडों और आडंबरों को आड़े हाथ भी लिया, यह भी बताया कि साम्राज्यवाद - सामंतवाद किस प्रकार इसको जनता के शोषण केलिए प्रयोग करता है। इसके चरित्र के समस्त घिनौने रूप को हमारे समाने रख दिया। साथ में परंपरागत पाखंडों के फैलते हुए उदर को भी बतला दिया। रोहित, महंत, पूजारियों और पंडितों का यह वर्ग ' सेवासदन ' में महंत रामदास के रूप में चेतू की हत्या करता है, किसानों पर भयंकर जुल्म करता है, 'निर्मला' में मोटेराम जी सेरों मिठाइयों पर हाथ साफ करता है, ' गोदान ' में दातादीन के रूप में कर्ज देकर, तथा अपनी पाखंड भरी बातों से गाँव के किसानों का भयंकर शोषण करता है, यही मोटेराम अपने भाई - बाप सम्राज्यवाद - सामंतवाद की सहायतार्थ सत्याग्रह करता है। किंतु सुगंधित कलाकंद से लबालब भरे दौने को देखकर बेचार के मुँह से लारें टपकने लगती हैं। सारे जप -तप, अनुष्ठान हराम हो जाते हैं।

12 - <u>प्रेम की होली</u>

गंगी सत्रह साल की विधवा है। वह जानती है कि उसकेलिए संसार के सुखों का द्वार बंद है। लेकिन किसी ने भी गंगी को दुःखित होते नहीं देखा। वह सभी काम उमंग से करती थी। सभी लोग उसके आदर करते थे। जा बातें गंगी केलिए वर्जित थीं, उसकी ओर उसका मन जाता नहीं था।

एक बार होली का दिन था, सभी सुमंगलियों ने गुलाबी साडियाँ पहनी थीं। गंगी की साड़ी में रंग नहीं था। रात के तीसरे पहर दूसरे गॉवों के लोग होली खेलने आये। गंगी की मां ने उसे उससे रंगीन साड़ी की बात कही। पर गंगी ने इनकार किया।

गाँव में होली के दिन आस - पडोस के लोग आया करते थे। उस दिन लोगों ने भंग पिया। पकवान खाये। गंगी ने उन सबके हाथ धोने का काम किया। तब जवान लोग सिर नीचा करके हाथ दिखाते थे। भंग पीने के बाद होली के गीत गाने लगे। जवान ठाकूर गरीब सिंह गा रहा था। वह कठोर के बुध्धूसिंह का लडका था। गंगी जवान ठाकूर का गीत ध्यान से सुन रही थी। ठाकूर भी बार - बार गंगी की और देखता और मस्त होकर गया। जब सब लोग विदा हो गये तो गंगी और मैकू ने गरीबसिंह के बारे में बातें की। गंगी ठाकूर की याद करने लगी।

कई महीने गुज़र गये। एक दिन गंगी ने गरीब सिंह को आंगन से चलते देखा। उसने उसे घर बुलाना चाहा। लेकिन घर में उस वक्त कोई नर्द नहीं था। उसका दिल छडकने लगा। गरीबसिंह ने गंगी को एक बार देखा और आँखें नीची कर थीं। वह दृष्टि गंगी की आँखों में बस गयी। रात को सपने में थी गरीबसिंह की दृष्टि उसे दिखी थी।

एक बार संध्या का वक्त था, मैक द्वार पर बैठे काम कर रहा था। गंगी बैलों को खाना दे रही थी, तब गरीबसिंह वहाँ से होकर गया। सहसा गंगी ने चिल्लाकर मैकू से कहा कि ठाकूर जा रहा है। मैकू गरीबसिंह को घर बुलाया। गंगी ने शर्बत बनाया और ठाकूर को दिया। दोनों एक दूसरे को देखने लगे। ठाकूर बहुत दुबला हो रया था। उसे किसी बीयारी ने पकड़ा था। ठाकूर के जाने पर मैकू ने कहा कि ठाकूर की तबीयत खराब हो गयी है। वह बहुत दुबला हो गया है। गंगी को रात में ठाकूर की तबीयत की चिंता थी। कई दिन तक ठाकूर का कोई पता नहीं चला। गंगी ठाकूर की प्रतीक्षा में थी।

फिर दुबारा होली आयी। लेकिन गीत गानें केलिए ठाकूर नहीं आया। गंगी बेकरार हो गयी। जब रात हो गयी तो सभी लोग विदा हो गये। पर गंगी में आशा थी कि ठाकूर ज़रूर आयेगा। उसने मंदिर के ऊपर चढ़कर ठाकूर के घर के ऊपर निगाह उठाई। सहसा उसे वहाँ दस्कती हुई आग दिखाई पडी। उसने समस्या कि वह होली की आग है। वह मैकू को बुलाकर आग की ओर संकेत किया। मैकू ने कहा कि कोई पर गया है। वह चिता है होली नहीं। तक खबर आयी कि ठाकूर गरीबसिंह मर गया है।

गंगी चकित रह गयी। उस दिन से वह किर होली देखने नहीं गयी। होली हर साल आती है थी, लेकिन गंगी केलिए होली हमेशा केलिए खतम हो गयी थी।

हिन्दी के महान कथाकार प्रेमचन्द की अपार क्षमता इस कहानी में स्पष्ट है। होली के एक सांस्कृतिक प्रसंग को उन्होंने नये आयाम से प्रस्तुत किया है। एक छोटी सी कथातंतु को भी सरस और संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत कहने में वे कमाल दिखाते हैं। एक विधवा के जीवन को सूक्ष्म दृष्टि से आँकने की कोशिश उन्होंने की है। वे यह भी बताना चाहते हैं कि पति के मर जाने से पत्नी मरती नहीं है। उसके अपने जीवन की भी जिजीविषाएँ हैं। विधवा - विवाह की आवश्यकता पर भी यहाँ इशारा मिलता। समाज का विधवा के प्रति दृष्टिकोण भी यहाँ स्पष्ट है। गरीबसिंह और गंगी के मौन प्रेम की आखिर जब होली हो जाती है, जिसमें जो बेहद दर्द है उसे गंगी अपने ही दिल में छिपाती है। समाज इसे पहचाननेवाला नहीं है।

विधवा स्त्री के आदर्श जीवन पर कथाकार कहते हैं, "जो बातें उसके लिए वार्जित थीं उनकी ओर उसका मन ही न जाता था। उसके लिए उसका अस्तित्व ही न था। जवानी के इस उमड़े हुए सागर में मतवाली लहरें न थीं, डरावनी गरज न थी, अचल शांति का साम्राज्य था।" मगर आश्चर्य है कि प्रेम रूपी मानवीय भाव को रोकने पर भी रोक नहीं सकता है। गरीबसिंह से मिलने के बाद गंगी के मन में ज़िन्दगी की उम्मीदें फूट पडती है। प्रेमचन्द के शब्दों में "उसमें और कुछ सोचने की, और कुछ करने की शक्ति न थी। ओह! कितनी नम्रता है, कितनी सज्जनता, कितना अदब"।

इस कहानी में मानवीय दिल को गहराई से छूने का प्रयास प्रेमचन्द ने किया है। होली के सांस्कृतिक परिवेश भी इसमें आ गया है। वास्तव में प्रेम की होली, दिल की संवेदनाओं का मर जाना ही है।

13 - यह भी नशा, वह भी नशा

प्रस्तुत कहानी प्रेमचन्द की एक उकृष्ट रचना है। इसका प्रारंभ होली के दिन में होता है। होली के दिन में रायसाहब के उधर होली की मदिरा भंग छन रही थी। सहसा मालूम हुआ कि जिलाधीश मिस्टर बुल वहाँ आ रहे हैं। भंग पीनेवाले सभी देशी लेग इधर- उधर भाग गये। लेकिन नशे में एक अजीब मुद्रा में रायसाहब वहीं बैठा रहा। ऐसा चेहरा बनाया कि मिस्टर बुल समझेंगे कि वह उसका स्वागत करने केलिए बैठा है।

मिस्टर बुल ने बरामदे में आते ही रायसाहब से कुशल पूछा। वह विदेशी अफसर है। लेकिन होली उत्सव का रीति - रिवाज़ उसे मालूम था। उन्होंने बर्तन से गुलाल लेकर रायसाहब पर छोड़ दिया। इस बात पर रायसाहब को खुशी महसूस हुई। आखिर एक गोरे ने पिचकारी छोडी है। यह तो पूर्व तपस्या का फल है। उसने मिस्टर बुल के माथे पर गुलाल का एक टीका लगाया।

जब मिस्टर बुल ने बर्तन में भंग देखकर रायसाहब से पूछा कि भंग पीने से क्या होगा? तब उसने उत्तर दिया कि भंग तो देशी चीज़ है। उसे बडी विधिपूर्वक बनाता है। उससे पीनेवालों की आँख खुल जायेगी। इसप्रकार कहा और उसने भंग गिलास में उंडेल दी और बुल साहब को दे दिया। दोनों बडे खुश बने।

दूसरे दिन अच्छे मुहूर्त पर रायसाहब बुल के घर गया। मिस्टर बुल शराब पी रहा था। रायसाहब शराब की बू से असह्य हो गया। मिस्टर बुल ने कहा कि उसने पिछने दिन देशी भंग पिया इसके बदले में रायसाहब को विदेशी भंग पीना पडेगा। कल की भंग अच्छी थी। उसके बदले में रायसाहब उसका मेहमान है, लेकिन रायसाहब ने कहा कि वह देशी आदमी है, मदिरा हाथ से भी न छूता। पर बुल ने नहीं माना। उसने शराब रायसाहब के मुँह में ज़बरदस्ती से लगा दिया। रायसाहब क्रुद्ध हुआ। उसने कहा कि शराब को छूना पाप है। लेकिन देशी भंग पवित्र वस्तु है। वह जडी - बूटी से बनती है। ऋषि, मुनि, महात्मा, देवी - देवता उसका सेवन करते हैं।

बुल ने इसका उत्तर यों दिया, उसने कहा कि भंग और शराब दोनों बुरी चीज़ है। नशा को सारी दुनिया बुरी कहती है। नशा से आदमी का अकल नष्ट होता है। इसमें उसका कोई दोष नहीं। भारत के लोग भंग पीकर दुराचारी बन जाते हैं। तभी तो भारत के लोगों के बीच अछूत की समस्या, सती - प्रथा आदि अनाचार और अंधविश्वास फैले हैं। इस प्रकार कहकर बुल ने उसका सलाम किया और विदा हो गया।

रायसाहब को जान में जान आयी। वह गाडी लेकर जल्दी वहाँ से लौट आया।

प्रस्तुत कहानी की पात्र संख्या बहुत सीमित है। कहानी संक्षिप्त और चुस्त है। रायसाहब को एक आदर्श नागरिक के रूप में चित्रित किया है। वह अपने आदर्शों से कभी विचलित नहीं होता। जिलाधीश की प्रेरणा से वह शराब नहीं पीता। प्रत्येक समाज की अलग - अलग संस्कृति होती है। उसके अनुरूप ही वह व्यवहार कर सकता है। अपनी संस्कृति को हमें कायम रखना चाहिए। भारत को आज़ादी मिलने के पहले की पृष्ठभूमि इसमें है। नशाबंदी आन्दोलन का प्रभाव इसमें लक्षित होता है। प्रेमचन्द ने नशा से मुक्त होने का संदेश यहाँ दिया है। साथ ही यह भी दिखाना चाहा है कि परतंत्र भारत में ज़मीन्दारों और अंग्रेज़ी अफसरों के बीच घनिष्ठ मित्रता रही थी। उसीका फायदा उठाकर ज़मीन्दार वर्ग किसानों तथा गरीबों का खूब शोषण करता था। कहानी की भाषा एवं शैली अत्यंत सरल है।

14 - कहानी के तत्व

आज की सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा है कहानी। साहित्य रूपी माला की मोत्तियों में एक है कहानी। कहानी का सामान्य तत्व 'कहना' होता है। आधुनिक कहानी पश्चिमी साहित्य से अधिक प्रभावित है। वर्तमान युग की आवश्यकताओं और परिस्थितियों ने आज की कहानी को जन्म दिया है। आगे कहानी की परिभाषाओं पर प्रकाश डाल रहा है।

एड्गर एलन पो ने कहानी को रसोद्रेक करने वाला एक ऐसा आख्यान माना है जो एक ही बैठक में पढा जा सके। इसी से मिलती - जुलती परिभाषा एच जी वेलस ने दी है -

"कहानी तो बस वही है जो लगभग बीस मिनट में साहस और कल्पना के साथ पढी जाय"।

सर डब्यू वालपॉल की परिभाषा महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार कहानी कहानी होनी चाहिए। अर्थात् उसमें घटित होनेवाली घटनाओं का लेखा - जोखा होना चाहिए। अनेकों आलोचकों ने संक्षिप्तता को कहानी का एकमात्र लक्षण माना है।

मुंशी प्रेमचन्द के अनुसार -

"कहानी एक रचना है, जिसमें जीवन के लिए एक अंग या एक मनोभाव प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है"।

यदि आधुनिक पदावली में कहना चाहे तो कहानी जीवन के किसी एक अंग अथवा मनोभाव को प्रदार्शित करनेवाली वह गद्यबद्ध रचना है जो मनोरंजक तथा कौतूहलवर्द्धक हो तथा जिसके अन्त में किसी चमत्कारपूर्ण घटना की योजना की जाय।

कहानी के छः तत्व होते हैं -

1. कथावस्तु
2. चरित्र - चित्रण
3. संवाद
4. वातावरण
5. उद्देश्य
6. शैली

कुछ विद्वानों ने भाव नामक सातवें तत्व मान लिया है। यह तो ऐसा तत्व है जो उपर्युक्त सभी तत्वों में अनुस्यूत रहता है। इसलिए इसे तत्व न माना जाता है।

1. कथावस्तुः-

कहानी की कथावस्तु अत्यंत संक्षिप्त होती है। घटनाओं का परस्पर संबन्ध होना आवश्यक होना चाहिए। कहानी कथानक बहुत अंश में कलाकार के उद्देश्यों और जीवन मीमांस पर निर्भर रहता है। कहानी का आदि, मध्य तथा अंत बहुत स्पष्ट तथा कलापूर्ण होना चाहिए। कहानी का शीर्षक कथावस्तु की सूचना देनेवाला तथा पाठकों के मन में कौतूहल जगानेवाला होना चाहिए।

2. चरित्रचित्रणः-

आजकल कहानी में कथानक की अपेक्षा चरित्र - चित्रण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है। चरित्र चित्रण का संबन्ध पात्रों से है। कहानी में पात्रों की संख्या बहुत कम होती है। इसमें पात्रों के चरित्र का पूर्ण विकासक्रम नहीं दिखाया जाता। लेकिन पात्र का व्यक्तित्व ज़रूर स्पष्ट होता है।

कहानी का पात्र सजीव होना चाहिए। वह चाहे कल्पना लोक के हो या वास्तविक संसार के, किन्तु वे सजीव और व्यक्तित्वपूर्ण होंगे। चरित्र - चित्रण की अनेक शैलियाँ होती हैं। एक प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक, जिसमें लेखक स्वयं पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालता है। दूसरा परोक्ष या नाटकीय ढंग, जिसमें पात्रों के वार्तालाप या कार्यकलापों से चरित्र स्पष्ट होता है।

सांकेतिक चरित्र - चित्रण वह होता है जिसमें गुणों की अपेक्षा उनके द्योतन करनेवाले कार्यों का अधिक वर्णन रहता है। प्रत्यक्ष चरित्र चित्रण में भी प्रायः सांकेतिक ढंग ही अधिक पसन्द किया जाता है। परोक्ष चरित्र चित्रण वार्तालाप द्वारा किया जाता है।

3. संवादः-

संवाद या कथोपकथन द्वारा ही पात्रों के हृदयंगत भावों को जान सकते हैं। वार्तालाप चरित्रों के अनुकूल होना चाहिए। कथोपकथन के ज़रिए कहानी में पात्रों के चरित्र का परिचय ही नहीं मिलता वरना उसके सहारे कथानक भी अग्रसर होता है। और एक जी उबानेवाले प्रकथन के भीतर आवश्यक सजीवता उत्पन्न हो जाती है। कथोपकथन को संगत, सजीव, चमत्कारपूर्ण और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए। सफल संवाद देशकाल, पात्र, परिस्थिति घटना आदि के अनुकूल होते हैं।

4. वातावरणः-

कहानी में उपन्यास की भाँति देशकाल या वातावरण के चित्रण के लिए अधिक गुंजाइश नहीं है, फिर भी कहानी की घटना का चित्रण देशकाल या वातावरण के अनुकूल होना चाहिए। कहानी में देशकाल की स्पष्टता लाने के लिए तथा कार्य से परिस्थिति की अनुकूलता व्यंजित करने के अर्थ इसका चित्रण आवश्यक होता है। वातावरण भौतिक और मानसिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है कि जो पात्रों की स्थिति की व्याख्या में सहायक हो।

5. उद्देश्यः-

प्रत्येक कहानी में कोई उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य होता है। कहानी का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं है वरना जीवनसंबन्धी कुछ तथ्य स्पष्ट करना या मानवमन का निकट परिचय देना है। कुछ लेखक समझौते को पसन्द करते है तो कुछ संघर्ष को, कुछ लोग संसार को जैसा - का - तैसा स्वीकार कर लेते है तो कुछ उसमें आमूल - चूल परिवर्तन चाहते हैं।

6. शैलीः-

शैली का संबन्ध कहानी के किसी एक तत्व से नहीं लेकिन सभी तत्वों से है और उसकी अच्छाई बुराई का प्रभाव पूरी कहानी पर पडता है। पाठकों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर निर्भर है। किसी बात के कहने और लिखने के विशेष प्रकार को है शैली कहते है। उपयुक्त शब्दचयन, पदमैत्री, सुसंगठित वाक्य विन्यास, अलंकार योजना, भाषा की चित्रोपमता, शब्द

शक्तियों का सफल प्रयोग आदि शैली के प्रमुख गुण हैं। प्रत्येक लेखक की अलग शैली होती है। मोटे तौर से दो प्रकार की शैलियाँ है - एक चलती मुहावरेदार भाषा की और दूसरी अलंकृत, संस्कृत प्रधान शैली। शैली का चुनाव विषय पर भी निर्भर रहता है। भाव - प्रधान कहानियों में दोनों प्रकार की शैलियाँ प्रयुक्त होती हैं किंतु मार्मिक स्थलों में साधारण शब्दों से भी भाव का अच्छा उद्रेक हो सकता है। अच्छी कहानी घटनाओं, भावों, विचारों, तथा प्रारंभ प्रसार और अंत में अन्विति लाने का प्रयत्न करती है।

15 - सप्रसंग व्याख्या कीजिए

1. ' कैसा बुरा रिवाज़ है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने का चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए '।

मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी के अमर कथा - सम्राट माने जाते हैं। वे हिन्दूस्तान की नयी राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार रहे है। प्रेमचन्द की रचनाओं में भारतीय समाज का, विशेषकर समाज के सर्वहारा वर्ग का सही चित्र प्रस्तुत है।

उन्होंने पहले - पहल, हिन्दी कथा साहित्य को ऐयारी त्रिलस्म की कुतूहभरी - जादूभरी गलियों से निकालकार, सामान्य जन - जीवन के यथार्थ राजमार्ग पर प्रतिष्ठित किया। उनकी कहानियों में दिल का सत्य झाँकता है। वे सदा अप्रिय सत्यों के चितेरे रहे हैं। विराट - मानव संस्कृति की धारा में भारतीय जन - संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया, उसके प्रमाण प्रेमचन्द के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकडों कहानियाँ हैं। समाज के निम्न, पददलित तथा गरीब लोगों के प्रति उनकी सदा सहानुभूति रही। प्रेमचन्द मानवता के पुजारी रहे। उन्होंने निराशावादी कवियों की तरह कभी भी निराशा और वेदना की रागिनी नहीं बजायी। कठिनाइयों को हमेशा चुनौती देते हुए उन्होंने उनका मुकाबला किया।

भारतीय ग्रामीण चेतना का जीवंत इतिहास है उनकी कहानियाँ। नारी जीवन की समस्याएँ, भ्रष्टाचार, विवाह, दांपत्य, किसान उत्पीडन, ज़मीन्दारी - महाजनी शोषण, सामाजिक रूढ़ियाँ, पुलिस अत्याचार, जाति - पाँति की समस्या आदि से संबंधित अनेक मुद्दों पर प्रेमचन्द ने प्रकाश डाला है। इसलिए उनकी रचनाएँ जितनी पुरानी है उतनी ही आधुनिक भी है। और वे समस्याएँ आज और प्रासंगिक है।

' कफन ' प्रेमचन्द की एक बहु चर्चित कहानी है। दरअसल कथाकार ने यहाँ अपनी भौतिकतावादी दृष्टि स्थापित करते हुए, मानवीय संबंधों के खोखलेपन और मूल्यहीनता की पहचान कराया है। घीसू और माधव पिता - पुत्र हैं। दोनों काम चोर हैं। माधव की पत्नी बुधिया की एक हद तक घर को संभालती है। उसके मर जाने पर पिता - पुत्र दोनों कफन लेने बाज़ार पहूँचते हैं। तब दोनों बात करते हैं। माधव बोला कि बुधिया को जलाने केलिए लकड़ी बहुत मिल गयी अब कफन ही चाहिए। पिता घीसू बोलता कि हलका सा कफन खरीद ले। पुत्र हामी भरता है कि रात में कौन देखेगा। तब घीसू कहता है कि यह बहुत ही बुरी प्रथा है। जिसे जीने जी तन ढँकने केलिए एक चीथडा भी नहीं था उसे मरने पर नये कफन की क्या ज़रूरत है। अगर यह पाँच रुपये पहले मिलते तो कुछ दवा - दारू कर सकता था। अब तो कफन से कोई फायदा नहीं। वह कफन के साथ जल भी जाता है।

प्रेमचन्द ने यहाँ घीसू के माध्यम से जन साधारण के हृदय का सत्य हमारे सामने प्रस्तुत किया है। जीते समय कोई किसी की सहायता नहीं करता। मरने पर उस पर सहानुभूति दिखानेवाले लोग होते हैं। यह समाज की एक विडंबना है। गरीबों का जीता - जागता चित्र यहाँ मिलता है। घीसू और माधव ने परंपरागत नैतिकता तथा दायित्वशीलता पर व्यंग्य किया है, उच्च वर्ग के सामाजिक मूल्यों को नकारा है, क्योंकि इन सब के पीछे जीवन के प्रति उनकी एक नयीं दृष्टि सक्रिय थी। व्यर्थता का बोध वस्तुवाद के नज़दीक ले जाता है, क्योंकि घीसू - माधव के रूप में सामंती - मूल्यों और जीवन के प्रति भाववादी दृष्टि की व्यर्थता का अनुभव करते हैं। गरीबोंका अंतः सत्य को मूर्तिमान करने में कथाकार सफल हुए हैं। भारत के आदमी की गरीबी को मार्मिक ढंग से व्यक्त करना और यथार्थ की कटुता का उभारना भी एक अनन्यतम उपलब्धि है। डॉ.बच्चन सिंह के अनुसार "डी - हयुमनाइज़ेशन की चरम - परिणति, व्यर्थता का बोध, चरम बोध वहाँ होता है, जहाँ उनका बोध नहीं होता। मधुशाला वह जगह है, जहाँ बोधहीनता का बोध होता है"। प्रेमचन्द ने यहाँ सामाजिक असमत्व, ज़मीन्दारी शोषण, अंधविश्वास, उपेक्षित वर्ग की नयी दृष्टि, आदि अनेक मुद्दों पर गहन विचार प्रस्तुत किये हैं ।

सप्रसंग व्याख्या - नमूने के प्रश्न

एक - कफन

1. अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें ..... यह तो इनकी प्रकृति थी।

2. कैसा बुरा रिवाज़ है ..... मरने पर नया कफन चाहिए।

3. वह न वैकुंठ में जाएगी ..... और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।

दो - लेखक

1. हमारा धर्म है काम करना ..... तो मेरा दोष नहीं।

2. दीपक का काम है जलना ..... उसे इससे प्रयोजन नहीं।

3. मेरी यह कुटिला ही ..... साहित्य सेवा पूरी तपस्या है।

तीन - जुरमाना

1. उसने सुना था कि जिन्हें फाँसी दी जाती .....
..... उससे मिलने दिया जाता है।

2. सहसा अपना नाम सुनकर वह चौंक पडी .....
..... पग उठाती हुई चली।

चार - रहस्य

1. उसका अहं भाव इतना प्रच्छन्न हो गया था .....
..... पृथक रखना चाहती थी।

2. मरदों ने हमेशा रूप की अपसना की है .....
.....रूपासक्ति का ही प्रमाण दिया है।

3. मैं सब कुछ सह लूँगी ..... उसकी रक्षा कीजिए।

पाँच - मेरी पहली रचना

1. महीनों के असंमंजस और हिचक .....
..... बाप - दादा का नाम डूबे या उतराय

2. आकर कमरा देखा वहाँ की सन्नाटा ..... भोजन तक नहीं किया

छ - कश्मीरी सेब

1. गाजर भी पहले गरीबों के पेट ..... स्थान मिलने लगा है

2. आदमी बेइमानी तभी करता है जब उसे ..... बेइमानी में सहयोग देना है।

सात - जीवन सार

1. दौड - धूप करके शायद ..... मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर।

2. गणित मेरे लिए गौरीशंकर की चोटी थी। कभी उस पर न चढ़ सका।

3. अब मेरा दृढ़ विश्वास है कि ..... सफल नहीं होता।

आठ - तथ्य

1. प्रसन्नता तो वर्तमान में ..... प्रसन्नता ही क्यों रहें

2. गजब हो जाएगा ..... देहातों ने कभी देखी हैं?

3. आज उसे मालूम हुआ ..... केवल स्वप्न था।

नौ - दो बहनें

1. हमेशा से धन की यही महिमा ..... पूजा होती है।

2. पिंजडे में कठघरे में रहने से अच्छा है ..... निवास स्थान है।

3. कभी नहीं ..... दुनिया को विष खिला सकता है।

दस - आहुति

1. नीले आकाश में एक छायाचित्र सा ..... सत्य की सजीव मूर्ति।

2. तुम दिल में समझते हो ..... दृढ़ संकल्प है।

3. कम से कम ने मेरे लिए स्वराज्य का यह अर्थ .....
..... आश्रय न मिल सके।

ग्यारह - होली का उपहर

1. मेरे हृदय में तो अभी से ..... प्रत्यक्ष क्या होगा, कौन जाने।

2. आँखों से स्नेह और गर्व की ..... आनंद मिलन था।

बारह - पंडित मोटेराम की डायरी

1. मैं धन नहीं माँगता ..... सम्यवादी बनने को तैयार हो जायेंगे।

2. संसार उसका है ..... वह कौड़ी का तीन है।

3. कितने ही शास्त्रार्थों में सम्मिलित हुआ है .....
..... पिलाकर छोड़ दिया।

तेरह - प्रेम की होली

1. जो बातें उसकेलिए वर्जित थीं ..... अचल शांति का साम्राज्य था।

2. होली हर साल आती ..... सदा केलिए चली गयी।

चौदह - यह भी नशा, वह भी नशा

1. ऋषि, मुनि, साधु, महात्मा ..... पाप समझते हं।

2. हम समझता है कि तुम्हारा पंडित ..... अच्छा सलाम।

Part - III

भाग - 3

कुछ विचार

1. साहित्य का उद्देश्य

हिन्दी के अमर कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं प्रेमचंन्द। ' कुछ विचार ' नामक ग्रंथ में उनके भाषा एवं साहित्य संबंधी निबंध संकलित हैं। इन निबंधों में प्रस्तुत विचार काफी महत्वपूर्ण हैं। ' साहित्य का उद्देश्य ' इसका पहला अध्याय है। इसमें साहित्य की परिभाषा तथा उसके प्रमुख उद्देश्यों पर गहन विचार प्रस्तुत करते हैं। लेखक ने इसमें सौन्दर्य संबंधी दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डाला है। प्रस्तुत निबंध प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम लखनऊ अधिवेशन में सभापतित्व करते हुए दिया हुआ प्रेमचन्दजी का अभिभाषण है।

निबंध के प्रारंभ में उन्होंने हिन्दी उर्दू , हिन्दुस्तानी के प्रारंभिक साहित्य की उद्देश्य शुद्धता पर प्रकाश डाला है। इसका प्रमुख उद्देश्य विचारों तथा भावों से बढकर भाषा का निर्माण करना था। भाषा को लेखक साधन मानते हैं, वह साध्य नहीं। बोलचाल और लिखने की भाषा में भावों का साम्य है। अर्थात् बोल चाल में लोग अपने हर्ष - शोक आदि भावों का चित्र खींचते हैं। साहित्यकार भी लेखनी के माध्यम से इसी भाव प्रकट करते हैं और वह युगों तक पाठकों के हृदय को प्रभावित करता रहता है।

प्रेमचन्दजी साहित्य को उसी रचना को कहते हैं, जिसमें कोई सचाई प्रकट की गयी हो, जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित और सुंदर हो और जिसमें दिल व दिमाग पर असर डालने का गुण हो। वे साहित्य को जीवन की आलोचना मानने के पक्ष में हैं। साहित्य में सिर्फ कल्पना की ऊँची उडान नहीं होना है। कल्पना की उडान से हम दुनिया की कठिनाइयों से दूर भागना चाहते हैं। लेकिन इसे जीवन की सार्थकता नहीं कह सकते। प्राचीन काल के साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन था। मगर आज का साहित्य जीवन की समस्याओं पर विचार करता है और उसका समाधान भी ढूँढता है।

अनुभूति की तीव्रता पर लेखक विशेष बल देते हैं। साहित्य की उत्कृष्टता की वह वर्तमान कसौटी है। प्रेमचन्द के अनुसार वही रचना आकर्षक तथा ऊँचे दर्जे की होती है। वे कहते हैं, " जो हममें सच्चा दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहने का अधिकारी नहीं "।

प्रेमचन्द का कहना है कि साहित्य का एक प्रमुख साधन सौन्दर्य - प्रेम है। साहित्यकार में सौन्दर्य जगाने की प्रवृत्ति जितनी ही जागृत और साक्रिय होती है, उसकी रचना उतनी ही प्रभावमयी होती है। साहित्यकार को सच्चाई ही रचना में लाना है, उलटे हो तो उसे समाज रूपी अदालत उसके विरुद्ध फैसला सुना देगी। आज की कहानियों में प्रत्यक्ष अनुभव का ही चित्रण है। अर्थात् पात्रों के ज़रिए खुद लेखक बोल रहा है। इसलिए साहित्य को मनोवैज्ञानिक जीवन चरित्र कहा जाता है।

साहित्यकार अपनी बहुज्ञता एवं विचारों की विस्तृति से पाठकों को जगायें तथा उनका मानसिक विकास करें। प्रेमचन्द के अनुसार - " साहित्यकार की दृष्टि इतनी सूक्ष्म, इतनी गहरी और इतनी विस्तृत हो कि उसकी रचना से हमें आध्यात्मिक आनंद और बल मिले "। साहित्य के अध्ययन से हमारा अंतःकरण प्रकाशित होता है। अर्थात् एक हद तक हमारी कमज़ोरियों दूर हो जाती है। साहित्य हमें इन सांसारिक बंधनों से मुक्त करता है।

साहित्य के उद्देश्य पर लेखक कहते हैं - " साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनता है, दूसरे शब्दों में, उसी की बदौलत मन का संस्कार होता है। यही उसका मुख्य उद्देश्य है "।

हिन्दी के महान कलाकार प्रेमचन्दजी का मानना है कि कला का उद्देश्य सौंदर्य वृत्ति की पुष्टि करना है। प्रकृति के सभी सुंदर दृश्यों में सभी सौन्दर्य न देख पाते हैं। सौन्दर्य मन के भाव तथा परिस्थिति पर आधारित है। प्रेमचन्दजी के शब्दों में - " सौन्दर्य भी और पदार्थों की तरह स्वरूपस्थ और निरपेक्ष नहीं उसकी स्थिति भी सापेक्ष है "।

गरीब, निर्धन तथा पीडितों के जीवन में हम सौन्दर्य देख पाते हैं। उसकी वेश - भूषा में भी सौन्दर्य है। साहित्यकार की पैनी दृष्टि होनी चाहिए।

लेखक के अनुसार एक सोद्देश्य संगठन आजकल परम आवश्यक है। यदि हम अब भी धर्म और नीति का दामन पकडकर समानता के ऊँचे लक्ष्य पर पहुँचना चाहें, तो विफलता ही मिलेगी। लेखक के मत में हमें एक ऐसे नये संगठन को सर्वांगपूर्ण बनाना है, जहाँ समानता केवन नैतिक बंधनों पर आश्रित न रहकर अधिक ठोस रूप प्राप्त कर ले, हमारे साहित्य को उसी आदर्श को अपने सामने रखना है।

साहित्यकार को सुन्दरता की कसौटी बदलने की ज़रूरत है। साहित्य को सिर्फ मनोरंजन का साधन मानना भी सही नहीं है। प्रेमचन्द की राय में, " वह देश - भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई ही नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई है "। साहित्यकार साज को आगे बढने की राह दिखाता है। साहित्यकार पैदा होता है, उन्हें बनाया नहीं जाता। साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद एवं व्यक्तिवाद की सीमा से बाहर निकलकर मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक होती जाती है। साहित्यकार समाज का अभिन्न अंग है। उन्हें अपनी विद्या और योग्यता से समाज को अधिक लाभ पहूँचाने की कोशिश करनी है। हमारे साहित्य का मानदंड ऊँचा करना है। लेखक को समाज के प्रत्येक पहलू का विश्लेषण करना है। तबी साहित्यकार का आदर्श हम ऊँचा कर सकते हैं।

प्रेमचन्द के अनुसार सच्चा कलाकार वह है जो स्वार्थमयी जीवन का प्रेमी नहीं होता। वह खुले दिल से समाज की सेवा करता है। भाषा - शैली तथा बोध गम्यता पर बल देते हुए वे कहते हैं - " जो साहित्यकार अमीरों का मुँह जोहनेवाला है, वह रईसी रचना - शैली स्वीकार करता है, जो जन साधारण का है, वह जन साधारण की भाषा में लिखता है "।

लेखक का मानना है कि साहित्यकारों में कर्मशक्ति का अभाव है। केवल मन बहलाव को साहित्य का काम नहीं मान सकते। लेखक समाज के झंडा लेकर चलनेवाले सिपाही हैं और सादी ज़िन्दगी के साथ ऊँची निगाह उनके जीवन का लक्ष्य है। जो आदमी सच्चा कलाकार है, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता। हमारा आदर्श व्यापक होना चाहिए, जिससे भाषा में भी सरलता आ जाती है।

निबंध के अंत में प्रेमचन्द ने अपने विचारों को सार संक्षेप में प्रस्तुत किया है। साहित्य में उच्च चिंतन, सौन्दर्य बोध, सच्चाई की अभिव्यक्ति, नवजागरण के स्वर की आवश्यकता आदि कई महत्वपूर्ण तत्वों पर बल देते हुए कहते हैं - " हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो,सौन्दर्य का सार हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो - जो हममें गति और संघर्ष की बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं; क्योंकि अब और ज़्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है "। वस्तुतः प्रस्तुत निबंध के माध्यम से प्रेमचन्दजी ने साहित्यकारों को अपने दायित्व के प्रति अवगत कराया है, साथ ही एक नवीन जागरण एवं उत्साह पैदा करके समाज तथा देश के निर्माण तथा विकास - प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने की ओर संकेत किया है।

2 - कहानी - कला पर प्रेमचन्द के विचार

प्रेमचन्द भारतीय समाज केलिए सदा प्रासंगिक रहे हैं। हिन्दी साहित्य जगत में उनके आगमन से एक नया मोड़ आ जाता है। उनकी रचनाओं में मिट्ठी की गंध है। प्रेमचन्द उन लेखकों में हैं जिनकी रचनाओं से बाहर के साहित्य - प्रेमी हिन्दुस्तान को पहचान सकते हैं। उन्होंने हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय सम्मान को बढ़ा दिया है; हमारे देश को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गौरव प्रदान किया है।

' कुछ विचार ' नामक ग्रंथ में प्रेमचन्दजी साहित्य और भाषा से संबंधित गहन विचार प्रस्तुत करते हैं। साहित्य के उद्देश्य पर विस्तार से विश्लेषण करने के बाद उन्होंने कहानी पर कई महत्वपूर्ण विचार बिन्दु प्रस्तुत किये हैं। ' कहानी - कला ' शीर्षक से तीन भागों में कहानी से संबंधित अपने सुचिंतित विचार प्रस्तुत करते हैं।

कहानी - कला के प्रारंभ में प्रेमचन्दजी प्राचीन धर्मग्रंथों एवं आज की कहानियों की तुलना करते हैं। उनके अनुसार पौराणिक धर्मग्रंथों में छोटी - छोटी कहानियाँ मिलती हैं, जिसकी ओजस्विनि रचना तथा शैली नुरूपण देखकर मौजूदा साहित्यकार चकित हो उठते हैं। आज कहानी में सभी बातें आ जाती हैं। जैसे - प्रेम, जासूसी, अदभुत घटनाएँ, विज्ञान, गप - शप आदि। आज की कहानियों में किसी भी प्रकार का उपदेश होना बुरा समझा जाता है। अर्थात् कहानियाँ, गल्प आदि लिखने की प्रथा प्राचीन काल में भी है।

धर्मग्रंथों के जैसे ही साहित्यिक ग्रंथों में नैतिक उपदेशों का विशेष स्थान था। अरबी में ' सहस्र - रजनी चरित्र ' की रचना हुई, लेकिन इसमें अदभुत रस की प्रधानता है। यूनान देश में एक नया ढंग - पशु - पक्षियों की कहानियों द्वारा उपदेश देने की - चली आयी। मध्यकाल में आख्यायिकाओं की रचना बहुत कम रही। उन्नीसवीं श्याब्दी में फिर आख्यायिकाओं की रचना की शुरूआत हो गयी। यूरोप, फ्रांस, और रूस के साहित्य में गल्पों का प्रचार बहुत अधिक है और वे उच्चकोटि की भी है। अंग्रेज़ी में भी डिकेन्स, वेलस, हार्डी, किप्लिंग आदि ने महत्वपूर्ण कहानियों लिखी हैं। भारत में बंकिमचन्द और रवीन्द्रनाथ ने उस समय कई कहानियाँ लिखी हैं।

आगे लेखक प्रेमचन्दजी कहानी और उपन्यास के अंतर पर विचार करते हैं। उनके ही शब्दों में - " उपन्यास घटनाओं, पात्रों और चरित्रों का समूह है, आख्यायिका केवल एक घटना है "। उपन्यास में बहुत ही विस्तृत और अनावश्यक वर्णन केलिए तक गुँजाइश है। कहानी में इस प्रकार का वर्णन बिलकुल अनपेक्षित है। इसपर प्रेमचन्द यों लिखते हैं -

"कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफ़िल शुरु होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्र को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से से भी नहीं हो सकता"। कहने का तात्पर्य यह है कि कहानी की एक छोटी सी पंक्ति पढने पर अपनी पूर्ण कला का प्रभाव होना है जैसे गीत की एक तान सनने पर आनंद की प्राप्ति होती है।

प्रेमचन्दजी कहानी के प्रारंभ की ओर दृष्टि डालते हैं। कहानी का प्रारंभ दो मित्रों की बातचीत से, पुलिस कोर्ट के दृश्य से होना वास्तव में अंग्रेज़ी आख्यायिकाओं का अनुकरण है। लेखक के अनुसार इससे कहानी की सरलता में बाधा पडती है। यूरोप के विज्ञ आलोचक कहानी केलिए अंत नहीं मानते। 'कहानी - कला 1' के अंत में यह विचार प्रकट किया गया है कि साहित्य समाज को आगे बढ़ाने का रास्ता दिखाता है। अंधकार में पडे हुए लोगों को रोशनी से जगते हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में -

"वह साहित्य को समाज का दर्पण नहीं मानता, बल्कि दीपक मानता है, जिसका काम प्रकाश फैलाना है"। यानी दर्पण में उस समाज या लोगों का असली चित्र सामने दीखता है। लेकिन बुराई से कैसे भलाई की ओर बढ़ सकता है, इसका चित्र नहीं होता है। साहित्यकार इन बुराइयों से छुटकारा पाने का रास्ता दिखाते हैं।

'कहानी - कला 2' के प्रारंभ में कहानी से प्राप्त आनंद तथा सत्य पर प्रकाश डाला गया है। एक आलोचक के कथन से अध्याय की शुरूआत होती है। वह यों है -

"इतिहास में सब कुछ यथार्थ होते हुए भी वह असत्य है और कथा - साहित्य में सब कुछ काल्पनिक होते हुए भी वह सत्य है"। इतिहास से आनंद की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए वह असत्य है। साहित्य हमें अपने साथ जुडाता है तथा उससे आनंद की प्राप्ति होती है। इस कारण वह सत्य है। साहित्य पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करता है तथा पाठक उसमें डूब जाते हैं। अर्थात् जहँ आनंद है, वहाँ सत्य है। प्रेमचन्द के शब्दों में -

"साहित्य काल्पनिक वस्तु है,पर उसका प्रधान गुण है आनंद प्रदान करना और इसलिए वह सत्य है"। साहित्य का एक भाग है कहानी। साहित्य मानव केलिए है। मनुष्य के मनोरहस्यों को खोलने का कार्य करता है।

प्राचीन काल से ही साहित्य का अभिन्न अंग है कहानी। आज की कहानी में मुख्यतः मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन यथार्थ का चित्रण है। अनुभूति की तीव्रता से कहानीकार रचना करते हैं। यथार्थ जीवन से बढ़कर हम कहानी में चित्रित जीवन से प्रभावित होते हैं।

आगे प्रेमचन्दजी कहते हैं कि कला केवल यथार्थ की नकल का नाम नहीं है। अर्थात् वह वास्तव में काल्पनिक होता है, फिर भी वह यथार्थ प्रतीत होता है। उनके ही शब्दों में -

"कला दिखती तो यथार्थ है पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो"।

कहानी का विकसित रूप पश्चिम से ले लिया है। पहले के कथा - साहित्य में बदलाव आ गया चाहे विषय के क्षेत्र में हो या शैली में। सौ साल पहले यूरोप में कहानी से लोग अनभिज्ञ थे। हिन्दी में पच्चीस साल के पूर्व कहानी का प्रारंभ न हुआ था। यही उस समय लेखक का कहना है। आज की अधिकांश पत्रिकाओं में दो या चार कहानियाँ छपती हैं। प्रेमचन्द कहते हैं कि आज मनोरंजन केलिए समय का अभाव है। कहानी केलिए पन्द्रह - बीस मिनुट ही काफी है। आज लोग

कहानियों से उपदेश नहीं चाहते हैं, मनोरंजन तथा मानसिक तृप्ति मिल जाए। एक ही घटना भिन्न - भिन्न प्रकृतिवाले मनुष्यों को भिन्न- भिन्न रूप से प्रभावित करती है। ऐसी घटना को, सफलता को दिखा सकें तो, वही आकर्षक होगी। यही प्रेमचन्दजी का मत है।

प्रेमचन्द के अनुसार कहानियाँ मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं - कुछ घटना प्रधान और कुछ चरित्र - प्रधान। चरित्र - प्रधान कहानियों में चरित्र के एक अंग पर ज़ोर दिया जाता है। जब कहानी के चरित्र पाठकों से संबंधित हैं तो उन्हें आनंद प्राप्त होता है। यह आनंद उत्पन्न करने में लेखक की सफलता मौजूद है। 'कहानी - कला - 2' के अंत में प्रेमचन्द आज की हिन्दी कहानियों पर विचार करते हैं। आज की कहानियों में चरित्र तथा घटनाओं की प्रमुखता नहीं रही, बल्कि उनके ही शब्दों में कहें तो, "वह केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का, सजीव हृदय - स्पर्श चित्रण है। इस एकतथ्यता ने उसमें प्रभा, आकस्मिकता और तीव्रता भर दी है"।

अब कहानी की शैली प्रवाहमयी है। प्रेमचन्द कहते हैं कि पात्रों की मनोगति स्वयं घटना की सृष्टि करें। पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने का महत्व रहा है। आज के लेखक पाठकों की सुंदर भावनाओं को जगाने की कोशिश करते हैं।

'कहानी - कला - 3' के प्रारंभ में प्रेमचन्द जी यह विचार प्रस्तुत कर रहे हैं कि कहानी हमेशा जीवन का एक अभिन्न अंग है तथा कहानियों का जन्म मानव के बोलने शुरू होने के साथ ही हुआ था। प्रेमचन्द के अनुसार प्राचीन कहानियों से मानव जितनी आसानी से आनंद उठाता है उतनी आसानी से आज की कहानी से नहीं। प्रकृति के प्रत्यक्ष सौन्दर्य से हमें आध्यात्मिक उल्लास मिलता है, वही दृश्य लेखक रंग एवं कल्पना के मिश्रण से हमारे सामने प्रस्तुत करता है तो उसमें हमें आत्मीयता के संदेश की प्राप्ति होती है। अलंकारों के दुरुपयोग से कला का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

प्राचीन कहानियाँ घटना - वैचित्र्य के कारण मनोरंजक होता है, रस की कमी उसमें है। प्रेमचन्द के अनुसार आधुनिक लेखक केवल बाह्य रूप पर दृष्टि न डालते, बल्कि उनके मनोगत भावों तक पहूँचना चाहते हैं। उनके शब्दों में -

"जो लेखक मानवी हृदय के रहस्यों को खोलने में सफल होता है, उसी की रचना सफल समझी जाती है"। प्रेमचन्दजी आगे कहते हैं कि वर्तमान उपन्यास या आख्यायिका का आधार मनोविज्ञान ही है।

साहित्य सत्य, सेवा, न्याय आदि दैवी तत्वों को जगता है। प्रेमचन्द के अनुसार हमारी आत्मा के विकास में ईर्ष्या, अहंकार आदि मनोविकार बाधा डालते हैं। जब मन इन बाधाओं को परास्त करके स्वाभाविक कर्म को प्राप्त करने की सदैव चेष्टा करता रहता है, इसी संघर्ष से साहित्य की उत्पत्ति होती है। यही साहित्य की उपयोगिता भी है।

प्रेमचन्दजी के अनुसार कहानियों अपने सर्वभौमिक आकर्षण के कारण संसार के प्राणियों को एक दूसरे के निकट पहूँचा दिया है। उनमें एकत्म भाव उत्पन्न करने में भी सक्षम होती हैं। विश्वभर के देशों की कहानियों पढ़कर हम उन सभी देशों तथा लोगों के साथ आत्मिक संबंध स्थापित कर लेते हैं। हमारे परिचय का क्षेत्र पहाड़, द्वीप, सागर आदि लाँघकर कोसों दूर तक पहूँच जाता है। हम वहाँ भी अपनी ही आत्मा का प्रकाश देखने लगते हैं। वहाँ के किसान, मज़दूर तथा विद्यार्थियों से हम घनिष्ठ परिचय महसूस करने लगते हैं।

आजकल हिन्दी कहानियों को काफी प्रचुरता मिल गयी है। अधिकांश पत्र - पत्रिकाओं में दो या तीन कहानियों छप जाती हैं। सभी क्लासों में कहानियाँ पढायी जाती हैं। सांस्कृतिक विकास केलिए कहानी को प्रेमचन्दजी उत्तम साधन मानते हैं।

हर एक काल्पनिक रचना में मौलिक सत्य मौजूद रहता है। अफलातूँ का यह सिद्धांत काफी प्रसिद्ध है। प्रेमचन्द इसे पकड़कर यह साबित करना चाहते हैं कि कहानियाँ भी सत्य हैं। कालक्रम से इतिहास, विज्ञान, दर्शन आदि में परिवर्तन हमेशा होते रहते हैं, लेकिन कथा का संबंध मनोभावों से है कि जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, यही प्रेमचन्द का मत है। कहानीकार किसी भी हालत में जीवन - सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकता। ' कहानी - कला ' निबंध माला से यह स्पष्ट हो जाता है कि कहानी के कथ्य और शिल्प पक्ष पर प्रेमचन्द का गहरा ज्ञान है। उन्होंने वास्तव में उदीयमान लेखकों व कहानिकारों केलिए सच्चा पथ - प्रदर्शन किया है। लेखक ने यह साबित किया है कि आजकल की कहानियाँ साहित्य रूपी हार के अनमोल रत्न हैं। सच में उन्होंने कहानियों में मानव - आत्मा का ही दर्शन किया है। इसीलिए उनका कथा - साहित्य अमर भी है।

3 - <u>प्रेमचन्द की उपन्यास संबन्धी परिकल्पना</u>

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उस सामंती संस्कृति का विरोध किया है, जो सामान्य जनता के सुख और श्रम का शोषण कर रहे थे। उपन्यास के बारे में प्रेमचन्द ने सुचिंतित विचार प्रस्तुत किये, साथ ही उपन्यास के मूल विषय को भी अपनें दृढ़ चिंतन से निर्धरित कर दिया।

विभिन्न विद्वानों ने 'उपन्यास' को परिभाषित करने का स्वयत्न किया, पर इसमें कोई ऐसी परिभाषा नहीं, जिस पर सभी लोग सहमत हैं। उपन्यास पर प्रेमचन्द द्वारा दी गयी परिभाषा अत्यंत विशाल एवं चिंतनयोग्य लगती है। प्रेमचन्द के शब्दों में - " मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश चालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है "।

प्रेमचन्द यह मानते हैं कि प्रत्येक उपन्यासकार को मनुष्य के सब चरित्रों का अध्ययन करके अपने पाठकों के सामने रख देना चाहिए, क्योंकि सब आदमियों के चरित्र में बहुत कुछ समानताएँ - असमानताएँ होती हैं। चरित्र की समानता - असमानता को दिखाना ही उपन्यास का मुख्य कर्तव्य है। प्रेमचन्द बताते कि हमारा चरित्राध्ययन जितना ही सूक्ष्म, जितना ही विस्तृत होगा, उतनी सफलता से हम चरित्र चित्रण कर सकें। इसप्रकार के चरित्राध्ययन करते समय उपन्यासों की दो श्रेणी हो जाती हैं - यथार्थवादी व आदर्शवादी।

यथार्थवादी उपन्यासों में चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ या नग्नरूप में रख देना चाहिए। इसमें वह इस पर ध्यान नहीं रखता कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है याकुचरित्रता का परिणाम अच्छा। यहाँ चरित्र अपनी कमज़ोरियाँ या खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते हैं। यथार्थवादी अनुभव की बेडियों में जकड़ा होता है चूँकि संसार में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता होती है। सच तो यह है कि उज्वल से उज्वल चरित्र में भी कुछ न कुछ होते हैं। प्रेमचन्द मानते हैं कि यथार्थवादी हमारी दुर्बलताओं, विषमताओं और क्रूरताओं के नग्न चित्रण यथार्थवादी हमें निराशा में धकेल देते हैं, मानवीयता या मानव चरित्र से हमारे विश्वास को दूर रहते हैं। परिणाम स्वरूप हमें अपने चारों तरल बुराई ही नज़र आती है।

यथार्थवाद पर ज़ोर देनेवाले लोगों का ध्यान समाज की कुप्रथाओं पर ही पड़ते हैं। यथार्थवादी लोगों को सदा इस बात पर ध्यान रखना है कि दुर्बलताओं का चित्रण करते समय शिष्टता की सीमाओं से अगे न बढ़ना है। मानव स्वभाव की ऐसी एक विशेषता है कि केवल पुनरावृत्ति उसको नहीं रूचते। विषयों को उसी तरह चित्रित करने से उसका प्रभाव उतना नहीं पडता। घुमा फिराकर या बढ़ा चढ़ाकर चित्रित करने से सभी विषय उसके मन को वर्शीभूत कर सकते, चाहे वह कितना ही भया हो या बुरा। इसलिए प्रेमचन्द उपान्यासकारों का कर्तव्य कोरे यथार्थ का वर्णन नहीं मानते, क्योंकि यथार्थ से समाज की कोई भलाई नहीं होती।

आदर्शवादी लेखक हमेशा इस बात पर ध्यान रखते हैं कि हमारा परिचय हमेशा पवित्र हृदय वाले चरित्रों से करा जाय। यथार्थवाद और आदर्शवाद में यह भिन्नता होती है। यथार्थवाद हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें किसी मनोरम स्थान में विचरण करने देता है। आज के लोग जिसकी कामना करता है या आज की दुनिया में जिसका अभाव होता है, उसको आदर्शवाद पूरा कर देता है।

उपन्यास से प्रेमचन्द का मतलब न केवल यथार्थवाद से है और न आदर्शवाद से। प्रेमचन्द की मान्यता है " वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो "। इसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहते हैं। आदर्श को सजीव बनाने केलिए यथार्थ का उपयोग करने का उपदेश प्रेमचन्द ने इस संदर्भ में दिया है। उपन्यासकार की सबसे बडी विभूति यह होती कि वे हमेशा अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से युक्त चरित्रों से पाठकों के मन को आकर्षित करें, क्योंकि सद्विचार और आदर्श का समावेश जिस पात्र में न हो, वह दो कौड़ी का समझा जाता है।

प्रेमचन्द कभी चरित्र को निर्दोष रहने की आवश्यकता पर बल नहीं देते, क्योंकि वे मानते कि महान से महान पुरुषों में भी कुछ न कुछ दीष अवश्य है, इसलिए सजीव चरित्र प्रस्तुतीकरण में उसकी कमज़ोरियाँ को दिखाने से कोई हानि नहीं है। निर्दोष चरित्र देवतुल्य है और इसका हम पर कोई प्रभाव नहीं पडता। प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यासकार का काम केवल मन बहलाना नहीं, हमारा मार्ग - दर्शन करना भी है।

वही साहित्य चिरायु बनता है जो हमेशा कला की पूर्ति केलिए की जाय और मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलंबित धार्मिक मत का प्रचार केलिए नहीं होना चाहिए। उपन्यासकार को सदा यह ध्यान होना है कि उपन्यास की स्वाभाविकता में इसप्रकार के विचारों के समावेश से कोई विहन नहीं पडना है, अर्थात् उपन्यास को सदा नीरसता से बचाना चाहिए। उपन्यास संबंधी वाल्टर बेसेंट की मान्यता है - " उपन्यासकार को अपनी सामग्री, आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते रहते हैं "। इसे लेखक मानते हैं।

उपन्यास लेखन में लेखक को इस पर महत्वपूर्ण ध्यान रखना है कि उसे क्या लिखना है या क्या छोडना है? उनको यह अनुमान करना है कि कौन - सी बात पाठक स्वयं सोच लेगा और कौन - सी बात उसे लिखकर स्पष्ट कर देनी चाहिए।

उपन्यासकार को अन्य प्राणियों में होनेवाली रचनाशक्ति को उजागर करने की क्षमता होनी चाहिए। दूसरों में छिपकर रहनेवाली रचना शक्ति को जगाना प्रत्येक साहित्यकार का कर्तव्य है। कुशल लेखक हमेशा यह अनुमान कर लेता है कि उपन्यास और कहानी को कल्पना प्रसूत करने से ही वह रोचक बनेगी। अनावश्यक या अनमेल व्यावसायों को हमेशा छोड़ना उपन्यासकार केलिए हितकारी हो जाएगी।

CUP/8413/11/500/SDE — 6

उपन्यास की रूपरेखा व्यक्त करते हुए उपन्यास केलिए उचित विषय की चर्चा भी प्रेमचन्द ने की है। उपन्यास की परिभाषा में ही प्रेमचन्द ने विषय को भी निर्धारित किया था। अपने चरित्रों के कर्म और विचार उनके देवत्व और पशुत्व, अपकर्ष - उत्कर्श अर्थत् मनोभावों के विभिन्न रूप और भिन्न - भिन्न दशाओं में उनका विकास उपन्यास के मुख्य विषय हैं। यदि उपन्यासों के विषयों पर सुदृढ एवं सुचिंतन करें तो अवश्य ज्ञात होगा कि सूर्य और धरती के बीच जितने विषय हैं, वे सब उपन्यास केलिए उचित हैं। समाज, नीति, पुरातत्व, विज्ञान आदि सभी विषयों का उपन्यास में है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उपन्यासकार केलिए कोई बंधन नहीं है। उपन्यास का विषय जितना ही विस्तार हो जाता है, उतना ही उपन्यासकार दो बेड़ियों में जकड़ना पडता है।

उपन्यासकार को इसका अधिकार है कि वह अपने विषय को घटना वैचित्र्य से रोचक बनाते। यहाँ उन्हें इस शर्त का पालन करना कि प्रत्येक घटना असली ढाँचे से निकट संबंध रखती हो। यदि लेखक अपने मुख्य विषय से हटकर दूसरे पर बहस करने लगता तो अवश्य पाठक के आनंद में बाधक बन जाय। प्रेमचन्द की मान्यता है - "उपन्यास में वही घटनायें, वही विचार लाना चाहिए जिनसे कथा का माधुर्य बढ़ जाय, जो प्लॉट के विकास में सहायक हों अथवा चरित्रों के गुप्त मनोभावों का प्रदर्शन करते हों"।

उपन्यास के विषय चुनते समय लेखक को इस पर ध्यान रखना कि संसार की प्रत्येक वस्तु उपन्यास का उपयुक्त विषय बन सकती है। लेकिन विषय का महत्व और उसकी गहराई भी उपन्यास के सफल होने में बहुत सहायक होती है। विषय जो भी हो, उसका मूल उद्देश्य असत् पर सत् का विजय पाना है। विषय तब ही महत्वपूर्ण बनेगा, जब उसके द्वारा स्पष्ट, गहरा और विकास पूर्ण चरित्र - चित्रण संभव हो। प्रेमचन्द के अनुसार यह सिद्धि उनकी रचना शक्ति पर निर्भर है। यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक परिस्थिति में पात्र कैसा आचरण करता है, पाठक भी उससे सहमत हो जाय।

विषय - प्रस्तुतीकरण करने केलिए पहले ही चरित्रों का मानसिक चित्र बना लेना और बाद में विकास दिखाना सरल ढंग है। मनोभावों को व्यक्त करने लायक वार्तालाप के माध्यम से ही विषय विकास पा सकता है। बातचीत हमेशा स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल, सरल और सूचना होना अनिवार्य है।

प्रेमचन्द मानते हैं कि यदि उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करें और सद्भाव जग उठें तो वही सफल उपन्यास माना जाता है। उपन्यासकार को हमेशा पाठकों की रुचि को अनुसार अनुभूतिपरक उपन्यासों का प्रणयन करता है।

अंत में प्रेमचन्द यह आशा करते हैं कि भविष्य में उपन्यासों में कल्पना कम होगा और स्वाभाविकता बढेगी। भावी उपन्यास जीवन चरित्र होगा, चाहे किसी बजे आदमी का या छोटे का। प्रेमचन्द मानते कि लेखक तभी इस आशा को पूर्ण कर सकें, जब उन्हें सभी मनुष्यों को भीतर सेजानने का गौरव प्राप्त हो।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यास विषय और विधान की दृष्टि से अन्य विधाओं से महान है, क्योंकि मानव चरित्र को उद्घाटित करने लायक महान विषय और प्रस्तुत विषय को वर्णन चातुर्य एवं विस्तार से सज - धजाने का अवसर उपन्यासकार को ही अन्य लेखकों से अधिक मिल जाता है।

4 - एक भाषण - सारांश

प्रेमचन्द जी ने आर्यसमाज के आर्यभाषा सम्मेलन के वार्षिक अवसर पर लाहौर में जो भाषण दिया था, उसमें भाषा, साहित्य शिक्षा और धर्म से संबंधित उनके दृष्टिकोण स्पष्ट होते हैं। एक ओर इसमें धार्मिक मैत्री की भावना दीखती है तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता की व्यापक भावना देख सकते हैं।

भाषण के प्रारंभ में प्रेमचन्द ने आर्यसमाज की समाज के प्रति महान सेवा की खूब सराहना की है। इसने समाज की सेवा करने के साथ कौमी ज़िन्दगी की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया है। हरिजनों का उद्धार, लड़कियों की शिक्षा, वर्ण व्यवस्था का विरोध, छुआछूत की समस्या आदि क्षेत्र में आर्यसमाज ने गणनीय काम किया है। इसीतरह तत्कालीन समाज में व्याप्त अंधविश्वासों तथा अनाचारों को समाप्त करने का प्रयास आर्यसमाज ने किया है। मौटे तौर पर समाज के मानसिक और बौद्धिक धरातल को ऊंपर उठाने का श्रेय उसका है। वेद जैसे गहन विषयों को साधारण लोगों तक पहूँचाने में आर्यसमाज सफल हुआ।

आर्यसमाज ने गुरुकुल शिक्षा को महत्व दिया। मनुष्य का सर्वांगीण विकास उसका लक्ष्य रहा। मन, बुद्धि तथा चरित्र का विकास इसमें प्रमुख है। सिर्फ बुद्धि को महत्व देनेवाली शिक्षा अधूरी है। प्रेमचन्द के शब्दों में, "अगर विद्या हममें सेवा और त्याग का भाव न लाये अगर विद्या हमें आदर्श केलिए सीना खोलकर खडा होना न सिखाये, अगर विद्या हममें स्वाभिमान न पैदा करे, और हमें समाज के जीवन - प्रवाह से अलग रखे, तो उस विद्या से हमारी अविद्या अच्छी"। गुरुकुलों ने हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाकर अपने भाषा - प्रेम को स्पष्ट किया है।

प्रेमचन्द की राय लिपियों का अंतर होने पर भी हिन्दी और उर्दू एक ही है। बोलचाल में तो उसमें बहुत कम फरक है। भाषा के विकास में हमारी संस्कृति की छाप होती है, और जहाँ संस्कृति में भेद होगा, वहाँ भाषा में भेद होना स्वाभाविक है।

बोली का परिमार्जित रूप ही भाषा है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि बोलियों ने भाषा के विकास में काफी योग दिया है। इन सबको पीछे हटाकर हिन्दी आगे आने में मुसलमानों का काफी श्रेय है। मुसलमानों ने ही दिल्ली प्रांत की इस बोली को अन्यान्य प्रांतों तक पहूँचा दिये। दक्खिन में इस तरह इस भाषा का प्रचार हुआ। मुसलमान बादशाह प्रायः साहित्यप्रेमी होती थे। बाबर, हुमायूँ, जहांगिर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब दाराशिकोह सभी साहित्य के मर्मज्ञ थे। अकबर साहित्य के रसिक थे। दक्खिन के बादशाहों ने भी साहित्य का प्रोत्साहन किया। मुगलों से भी पहले अमीर खुसरो ने हिन्दी की प्रथम रचना लिखी थी।

मुसलमानी ज़माने में ठेठ हिन्दी, उर्दू तथा ब्रजभाषा के रूप कायम रहे थे। आज के रूप तक पहूँचने में हिन्दी को बहुत समय लगा। सदल मिश्र को ही हिन्दी का आदि लेखक कह सकते हैं। लल्लूलाल, सैयद इंशा अल्लाह खाँ आदि का भी हिन्दी के विकास में विशेष योगदान है। इसलिए हिन्दी गद्य उस समय सिर्फ सवा सौ साल ही पुराना है।

हिन्दी और उर्दू के बीच वैमनस्य बढाना अच्छी बात नहीं है। दोनों का मिला जुला रूप हिन्दुस्तानी है। हमें ऐसी कौमी भाषा की आवश्यकता है जो पढे और अनपढे लोग भी सपझ सके। दोनों के बीच की दूरी भी मिट जाय। प्रेमचन्द की राय में कौम की जबान वह है, जिसे कौम समझे,

जिसमें कौम की आत्मा हो, जिसमें कौम के जज़बात हों। कौमी भाषा अगर पढे लिखे लोगों की भाषा हो तो साधारण लोगों को इससे कोई फायदा नहीं है। अंग्रेज़ी बोलनेवाले देशी लोग साधारण जनता से बहुत दूर चले गये हैं। उसी प्रकार बुद्धिजीवियों की भी दुनिया दूसरी है। वह खुद अपने प्रतिनिधि है, जनता के प्रतिनिधि नहीं।

लेखक का कहना है कि आम जनता में शिक्षा की कमी है। लेखकों को चाहिए कि वह अच्छी - सी - अच्छी भाषा में ऊँचे से ऊँचे विचारों को प्रकट करे। इसे समझने की ताकत जनता में उत्पन्न होनी चाहिए।

हिन्दी और उर्दू के मेल होने से ही हिन्दुस्तानी का सपना साकार होगा। फोर्ट विलियम कॉलज में हिन्दी और उर्दू को एक ही भाषा मान ली थी। हमें प्रचलित शब्दों को उपयोग से नहीं हटाना चाहिए। उसके बगैर शुद्ध रूप केलिए जिद करें तो, भाषा कठिन हो जायेगी। खेत को क्षेत्र, बरस को वर्ष, छेद को छिद्र, काम को कार्य बना देने की ज़रूरत नहीं है। इसी समस्या को दूर करने केलिए कवियों ने ब्रज और अवधी के प्रचलित रूप रखे थे।

आजकल विज्ञान की नयी शाखाएँ निकल रही हैं। साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दुस्तानी ठीक है। मगर आलोचना, अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन जैसे विषयों केलिए क्लासिकल भाषाओं से मदद ले सकते हैं। हिन्दुस्तान में पूर्ण रूप से कौमी भाषा के प्रचार केलिए हमें कठिन तपस्या की ज़रूरत है। दिलों की दूरी भाषा की दूरी का प्रमुख कारण है। आपस के हेल - मेल से ही इस दूरी मिटा सकता है।

साहित्य समाज को मानवता के रूप में देखता है। किसी भी प्रकार की वर्ग भावना को वह प्रोत्साहन नहीं देता। धर्म की महानता मानवता के आदर्श को ऊँचा उठाने में है। साथ ही उसमें हमदर्दी और भाई चारे की भावना होनी चाहिए। धर्म की व्याख्या करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं, धर्म नाम है उस रोशनी का, जो कतरे को समुद्र में मिल जाने का रास्ता दिखाती है; जो हमारी जात को इमाओस्त में, हमारी आत्मा को व्यापक सर्वात्मा में मिले होने की अनुभूति या यकीन करती है। साहित्य सेवी ही जनता में सच्ची धार्मिक जागृति पैदा कर सकते हैं। अब तक धर्म के आचार्यों और राजनीति के पंडितों ने हमें गलत रास्ते पर चलाया है। साहित्य को जीवन को आगे बढाने का मार्ग दर्शन करना चाहिए। साहित्यकार सौन्दर्य के उपासक होते हैं। संदेह और संघर्ष जीवन के पोषक तत्व नहीं हैं। साहित्य सदा इसके खिलाफ है। दुनिया में मानव जाति के कल्याण के जितने आन्दोलन हुए हैं, उन सभी केलिए साहित्य ने जमीन तैयार की है, जमीन ही नहीं तैयार की, बीज भी बोये और उसकी सिंचाई भी की। प्रेमचन्द के मत में, "साहित्य राजनीति के पीछे चलनेवाली चीज़ नहीं, उसके आगे - आगे चलनेवाला एडवांस गार्ड है। वह उस विद्रोह का नाम है, जो मनुष्य के हृदय में अन्याय, अनीति और कुरुचि से होता है।

आदर्श और यथार्थ पर वे कहते हैं कि साहित्य की आत्मा आदर्श है और उसकी देह यथार्थ - चित्रण। साहित्य में जीवन की समस्यायें नहीं है और उसमें हमारी आत्मा को स्पर्श करने की शक्ति भी नहीं है तो वह साहित्य निर्जीव है। साहित्य में हमारी आत्माओं को जगाने की, हमारी मानवता को सचेत करने की हमारी रसिकता को तृप्त करने की शक्ति होनी चाहिए। साहित्य में जीवन होना चाहिए। उसमें आत्म - सम्मान होना चाहिए।

प्रेमचन्द के मतानुसार राष्ट्र प्राणियों के उस समूह को कहते हैं कि जिनकी एक विद्या एक तहजीब हो, एक राजनैतिक संगठन हो, एक भाषा हो और एक साहित्य हो। इसी प्रकार भेद पैदा करनेवाले कारणों को हमें मिटाना चाहिए। भारतीय साहित्य की श्रेष्ठ रचनाएँ हिन्दुस्तानी भाषा में आ जाने से जनता में एकता की भावना सुदृढ हो सकती है।

अंग्रेज़ों की गुलामी ने हममें कौमियत तथा राष्ट्रीयता की भावना को पैदा कर दिया है। भाषा और साहित्य की भिन्नता ही हममें भिन्नता की भावना पैदा करती है। राष्ट्रीय संस्कृति की एक धारा बहने केलिए हममें भिन्नता डालनेवाले तत्वों को दूर करना चाहिए। प्रांतीय भावना के साथ ही हममें राष्ट्रीयता की गहरी भावना बनी रहनी चाहिए। हिन्दुस्तान केलिए हिन्दुस्तानी भाषा की ज़रूरत है। प्रांत, जाति और धर्म के भेद को हमें त्याग देना चाहिए। इन सबके बीच बहनेवाली भावधारा एक ही है। हम एक ही विरासत और संस्कृति के वाहक हैं। राष्ट्रीय संस्कृति के विकास में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

साहित्यिक जागृति किसी भी समाज की सजीवता का लक्षण है। साहित्य अच्छे से अच्छे दिल और दिमाग के अच्छे से अच्छे भावों और विचारों का संग्रह है। साहित्य में हर इन्सान की वेदनाएँ, कमज़ोरियाँ सब एकरूपता जाती हैं। साहित्य में हिन्दू, मुसलमान या ईसाई से बढ़कर मनुष्य और मनुष्यता का महत्व है। वह हमारी मानवता को दृढ़ बनाता है। वह हममें सहानुभूति और उदारता के भाव पैदा करता है। हमारी अपनी एक भाषा के विकास से ही हमारे अपने देश का विकास संभव होगा।

संक्षेप में कहें तो इस भाषण में प्रेमचन्द ने अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर रोशनी डाली है। राष्ट्रीय भाषा के स्वरूप पर उन्होंने विस्तार से प्रकाश डालने के साथ ही साहित्य के उद्देश्य पर भी दृष्टि डाली है। धर्म के प्रति प्रेमचन्द का विशाल दृष्टिकोण रहा है। एक प्रकार के सांप्रदायिक सद्भाव की भावना भी प्रस्तुत निबंध में प्रेमचन्द ने व्यक्त की है।

5 - जीवन में साहित्य का स्थान

प्रेमचन्द हिन्दी के युग प्रवर्तक साहित्यकार हैं। वे शोषित, पीड़ित, पददलित जनता के पक्षधर हैं। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को ऐयारी - तिलस्म की कुतूहल भरी गलियों से निकालकर जन - जीवन के यथार्थ राजमार्ग पर खड़ा कर दिया। वे आदर्शवाद तथा यथार्थवाद से प्रेरित रहे। अपनी रचनाओं में किसान तथा श्रमिक वर्ग को उन्होंने विशेष महत्व दिया। जीवन में साहित्य का स्थान निबंध में लेखक साहित्य का आधार जीवन मानते हुए उसे जीवन की प्रेरणादायक शक्ति के रूप में माना है।

प्रेमचन्द जी के अनुसार साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार खडी होती है। उसकी अटारियाँ, मानार और गुंबद बनते है, लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पडी होगी। साहित्य का मनुष्य के प्रति अपना एक दायित्व है। साहित्य का प्रमुख प्रयोजन आनंद है। वास्तव में यह जीवन का ही उद्देश्य ही सुंदर और सत्य से ही सच्चे आनंद की प्राप्ति होती है। ऐश्वर्य या भोग से प्राप्त आनंद की अपेक्षा साहित्य का आनंद अखंड एवं अमर है।

साहित्य के आनंद का संबंध रसानुभूति से हैं। साहित्य के नौ रस माने गये हैं। हर रस में सौन्दर्य और सत्य मौजूद है। राजा के महल में ,गरीब की झोंपडी में, गंदे नालों के अंदर साहित्य सौन्दर्य खोजता है। कृत्रिमता और आडंबर से आनंद बहुत दूर रहता है।

साहित्य वास्तव में सत्यम, शिवम, सुंदरम नारे को बुलंद करता है। सत्य का आत्मा से संबंध तीन प्रकार का है - जिज्ञासा, प्रयोजन और आनंद का। जिज्ञासा और प्रयोजन का संबंध दर्शन और विज्ञान से हैं तो आनंद का संबंध साहित्य से हैं। जो वस्तु दार्शनिक केलिए गहरे विचार एवं वैज्ञानिक केलिए अनुसंधान का रास्ता खोलती है वही वस्तु साहित्यकारों केलिए विह्वलता का विषय है। विह्वलता एक प्रकार का आत्मसमर्पण है, जिसमें ऊँच - नीच और भले - बुरे का भेद नहीं रह जाता। जैसे श्रीरामचन्द ने शबरी के जूठे बेर प्रेम से खाया है। भगवान कृष्ण विदुर के शाक को रुचिकार माना है। इसका कारण यही है कि इनकी आत्मा विशाल हैं। ऐसी महात्माओं में जड जगत से भी अपनी आत्मा का मेल करने की क्षमता है।

प्रेमचन्द के अनुसार जीवन केवल जीना खाना सोना और मर जाना नहीं है। यह तो पशुओं का जीवन है। मानव जीवन में भी यह सब प्रवृत्तियाँ होती है, क्योंकि वह भी तो पशु है। लेकिन इससे परे भी और कुछ है मनुष्य। हमारी मनोवृत्तियों पर संयम रखना जीवन का मंगलमय होने केलिए बहुत आवशयक है। आत्मविकास केलिए संयम आवश्यक है। साहित्य मनोविकारों के रहस्य खोलकर सद्वृत्तियों को जगाता है। प्रेमचन्द साहित्य को मस्तिष्क की नहीं, हृदय की वस्तु मानते हैं। धर्मग्रंथों में मानवी कथाएँ रखने से ही उसका अस्तित्व रह जाता है। ये कथाएँ ही मावन दिल को छू सकती हैं। मानव - चरित्र की उपेक्षा कोई कर ही नहीं सकता।

प्रेमचन्द की राय में साहित्य वह जादू की लकड़ी है, जो पशुओं में, ईंट - पत्थरों में, पेड़ पौधों में भी विश्व की अत्मा का दर्शन करा देती है। सच्चा साहित्यकार वह है, जो विश्व की आत्मा के साथ सामंजस्य प्राप्त कर लेता है। उसकी रचनाओं के भाव को प्रत्येक पाठक अपना ही भाव समझेंगे।

साहित्यकार पर युगीन समाज का गहरा प्रभाव रहता है। समाज की धड़कन से वह दूर नहीं हो पाता। सच्चा साहित्य कालजयी होता है। वह हर दिन नया बनता रहता है। साहित्य हृदय की वस्तु होने की वजह उसमें परिवर्तन नहीं होता। क्योंकि मानव हृदय में परिवर्तन नहीं होता। अपने समय का सच्चा चित्र होने के कारण साहित्य सच्चा इतिहास की है। साहित्य और इतिहास के संबंधों पर प्रेमचन्द लिखते हैं, "इतिहास जीवन के विभिन्न अंगों की प्रगति का नाम है, और जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकती है, क्योंकि साहित्य अपने देशकाल का प्रतिबिंब होता है"।

साहित्य में मानव के हृदय - परिवर्तन में लेखक का विश्वास है। इसलिए बुरे लोग की अच्छे बन सकते हैं। दिल्ली के बादशाह के वज़ीर के एक शेर से निर्दयी बादशाह नदिरशाह का मन परिवर्तन हुआ था। उस कातिल के दिल में भी मनुष्य जाग उठा है। स्वभाव से मनुष्य देवतुल्य है। लेकिन हम परिस्थितियों के वशीभूत होते है। दुनिया या समय के कापट्यों से प्रेरित होते हैं और अपना देवत्व नष्ट का देते हैं। साहित्य इसी देवत्व को अपने स्थान पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करता है।

हमारी सम्यता साहित्य पर ही आधारित है। भारतीय साहित्य का आदर्श उसका त्याग एवं उत्सर्ग हैं। यूरोप के साहित्य में खूनी कांडों का प्रदर्शन तथा स्वार्थ वृत्ति का चित्र ही मिलता है। अगर साहित्य का आदर्श भ्रष्ट है तो वह किसी सामाजिक आदर्श की सृष्टि नहीं कर पायेंगा। ब्यास, वालमीकी आदी के आदर्शों ने भारत का गौरव बढ़ा दिया था। साहित्य को हमेशा अपनी मर्यादाओं का पालन करना पडता है। साहित्यकारों को आत्मसंयम की आवश्यकता है। उसे आदर्शवादी होना चाहिए।

साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है। साहित्य मानव के सोये हुए देवत्व को जगाता है। वह विविध रसों की सृष्टि करते हुए जीवन में चिरंतन आनंद तथा शाश्वत सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करता है।

प्रस्तुत निबंध में प्रेमचन्द ने साहित्य को समाज को आगे चलानेवाली जीवन दायिनी संजीवनी शक्ति के रूप में माना है। राष्ट्र निर्माण तथा संस्कृति के उत्तरोत्तर विकास में साहित्य की विशेष भूमिका है। आजकल साहित्य और मानविकी विषयों को उपेक्षा के भाव से लोग देख रहे हैं। लेकिन प्रेमचन्द साहित्य को हृदय का तत्व माना। केवल मस्तिष्क से काम नहीं चलेगा। हमारी संस्कृति में हृदय पक्ष का विशेष महत्व है। संवेदनाओं को बलि चढाने से समाज नीरस एवं शुष्क बन जाता है। इसीलिए इस सूचना प्रौद्योगिकी एवं जैव प्रौद्योगिकी के युग में प्रेमचन्द के प्रस्तुत विचारों का विशेष महत्व और प्रासंगिकता है।

6 - उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी

प्रस्तुत निबंध में प्रेमचन्दजी उर्दू - हिन्दी- हिन्दुस्तानी संबंधित बहस पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि यह विवाद व्यर्थ है। इसमें राष्ट्रभाषा का समर्थन लेखक कर रहे हैं। सांस्कृतिक एकता होने केलिए यह परम आवश्यक है। राष्ट्रीय भाषा के बिना किसी राष्ट्र के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं हो सकती। राष्ट्रभाषा के बिना हम राष्ट्रीयता का दावा नहीं कर सकते।

इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि भारत के भाषा - भेद ने देश को खंड - खंड करने का काम किया है। मुसलमानों के शासन काल में राजनीतिक एकीकरण होने के बाबजूद भी राष्ट्रीयता का अस्तित्व नहीं रहा था। असल में भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का आरंभ अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना से शुरू हुआ था। राजनीतिक पराधीनता ही इसका एकमात्र कारण रहा। वह शाश्वत भी नहीं था। अंग्रेज़ों के चले जाने पर फिर भेद उत्पन्न हो सकता था। सही अर्थ में एक राष्ट्रीय स्वरूप या सांस्कृतिक एकता उस समय भी नहीं रहा था। भाषाई विविधता भी एक समस्या है।

एक राष्ट्रीय भाषा की स्थापना से राष्ट्रीय साहित्य की भी सृष्टि हो सकती है। यह हिन्दुस्तान के वैविध्य में जीनेवाले लोगों को एकता के रास्ते पर लाने में सहायता कर सकता है। उस समय भाषा के तीन स्वरूप रहे थे - उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी। इसमें कौन सा रूप राष्ट्रीय तौर पर स्वीकार करें, इसमें शंका रही। तीनों भाषा के अलग समर्थक भी रहे। इनमें जो मतभेद था उसे राजनीतिक स्वरूप भी दिया गया था। उर्दू और हिन्दी की स्वतंत्र उन्नति चाहनेवाले लोग थे। कुछों ने सोचा कि दोनों में कभी मेल और एकता नहीं हो सकता। दोनों भाषाओं की अलग प्रवृत्ति है। उर्दू का संबंध फारसी - अरबी से अधिक है तो हिन्दी का संस्कृत - प्राकृत से। दोनों भाषा भारत की राष्ट्रीयभाषा कहलाने का दावा भी करती रही। लेकिन दोनों का जो सम्मिलित स्वरूप उत्पन्न हो गया था, उसे हिन्दुस्तानी कह सकते हैं। प्रेमचन्द इसी भाषा को राष्ट्रीय भाषा के रूप में उचित मानते थे। यह सर्व मान्य हो सकता है और इसमें बोधगम्यता भी है। भारत के साधारण से साधारण लोग इसे समझ पायेंगे।

प्रेमचन्द के मत में, "यदि कोई शब्द या मुहावरा या पारिभाषिक शब्द जन - साधारण में प्रचलित है, तो फिर वह इस बात की परवाह नहीं करती कि वह कहाँ से निकला है और कहाँ से आया है। और यही हिन्दुस्तानी है। और जिसप्रकार अंग्रेज़ों की भाषा अंग्रेज़ी,जापान की जापानी, ईरान की ईरानी और चीन की चीनी है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा को इसी तौर पर हिन्दुस्तानी कहना केवल उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक भी है।"

अमीर खुसरो ने ' खालिकबारी ' की रचना करके हिन्दुस्तानी की नीवं रखी थी। उन्होंने इस ग्रंथ में जन साधारण के शब्दों का प्रयोग किया। उर्दू और हिन्दी में जनसाधारण केलिए साहित्य - रचना कम होती है। इसलिए वे रचनाएँ जनता को पसंद नहीं। हिन्दुस्तानी में लोग बोलते हैं मगर लिख नहीं रहे हैं। लिखने और बोलने की भाषा में अंतर हो सकता है।

उर्दू - हिन्दी को लेकर आपस में लडना ठीक नहीं है। हिन्दीवाले को ' मनुष्य ' से प्रेम है तो ' आदमी ' से नफरत है। इसीप्रकार उर्दूवाले ' खुदा ' को मानते हैं, किंतु ' ईश्वर ' को नहीं मानते। यह बडे दुख की बात है। उर्दू और हिन्दी का अलग - अलग कैम्प बनाना बुरी बात है। लेकिन लेखक का कहना है कि हिन्दुस्तानी इस आपसी मतभेद दूर कर दोनों में मेल - जोल पैदा कर सकती है। वह भी सिर्फ मेहमान की हैसियत से नहीं, बल्कि घर के आदमी की तरह। फिर आगे वे कहते हैं - " जो लोग भारतीय राष्ट्रीयता का स्वप्न देखते हैं और जो इस सांस्कृतिक एकता को दृढ़ करना चाहते हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे लोग हिन्दुस्तानी का निमंत्रण ग्रहण करें, जो कोई नई भाषा नहीं है, बल्कि उर्दू और हिन्दी का राष्ट्रीय स्वरूप है। "

शुद्ध हिन्दी और शुद्ध उर्दू का पक्षपाती मुसलमान भाई वहाँ की प्रांतीय भाषा का ही इस्तेमाल करतें हैं। उर्दू के प्रति अनुराग होने पर भी वे उपयोग बिलकुल नहीं करते। देहातों से आकर शहरों में बसनेवाले मुसलमान भी घरों में देहाती भाषा ही बोलते हैं।

दूसरी बात यह है कि बोलचाल की हिन्दी और उर्दू प्रायः एक सी है। हिन्दी उर्दू को बोलने में मिश्रित रूप से प्रयोग करना चाहिए। मिश्रित - कोश केलिए भी गुंजइश है। भारतवर्ष की सभी भाषाएँ या तो प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से संस्कृत से संबंधित हैं। इसलिए यहाँ संस्कृत मिश्रित हिन्दी का खूब प्रचार भी है। इसकी तुलना में अरबी - फारसी मिश्रित उर्दू भारत के कुछेक प्रांतों में ही बोली जाती है। संस्कृत, अरबी, फारसी मिश्रित हिन्दुस्तानी बोलने में सब केलिए सुविधा होगी।

विज्ञान तथा विद्या संबंधी विषयों केलिए पारिभाषिक शब्दों की ज़रूरत है। इन शब्दों को हमें विकसित करना चाहिए। अंग्रेज़ी के प्रचलित पारिभाषिक शब्दों में कुछ आवश्यक वरिवर्तन करके उन्हीं को ग्रहण कर सकते हैं। इसी प्रकार हमारी भाषाओं के अलावा अनेक विदेशी भाषआओं के सैकड़ों शब्द हम मामूली तौर पर उपयोग करते हैं। उन्हें स्वीकार करने में कोई दोष नहीं है।

हिन्दुस्तानी को और सरस तथा कोमल बनाया जा सकता है। राष्ट्रीय तौर पर एक संगठन बनाने की ज़रूरत है। हर प्रांतीय भाषाओं के प्रतिनिधि इसमें शामिल हो। हर साल इन लोगों का एकत्रित होकर राष्ट्रीय भाषा की समस्याओं पर विचार करना चाहिए। आखिल भारतीय हिन्दुस्तानी भाषा और साहित्य की एक सभा या संस्था खोलने से हिन्दुस्तानी भाषा के विकास में विशेष योग कर सकती है। इस ओर हमारा ध्यान पडना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

संक्षेप में कहें तो उर्दू और हिन्दी का विवाद काफी पुराना है। प्रेमचन्दजी ने इस के समाधान केलिए अच्छा सुझाव दिया। कौमी भाषा विषयक विचार और राष्ट्रभाषा की समस्याएँ आदि निबंधों में भी इससे मिलते जुलते विचार मिलते हैं। हर निबंध में प्रेमचन्द ने ज़ोर दिया है कि एक सशक्त राष्ट्रीय भाषा के बिना एक अखंड राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है। खेद के साथ कहना पडता है कि आज भी राष्ट्रभाषा का पूर्ण रूप से प्रचार तथा उपयोग भारत के सभी प्रांतों में नहीं हो पा रहे हैं।

7 राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी समस्यायें

हिन्दी के अमर कलाकार प्रेमचन्द ने अपने निबंध में राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी समस्याओं पर गंभीर रूप से विचार किया है। प्रस्तुत निबंध दक्षिण भारत हिन्दी प्रचारसभा, मद्रास के चतुर्थ उपाधि वितरणोत्सव के अवसर पर दिया गया दीक्षांत भाषण है। परतंत्र देश में भाषाई एकता की वकालत वे करते हैं। राष्ट्र भाषा के बिना एक अखंड राष्ट्र की कल्पना काफी कठिन हो जाती है। मातृभाषा के प्रति हमारी उदासीनता, उपेक्षा भाव पर लेखक ने सख्त चेतावनी दी है।

प्रेमचन्द के अनुसार आज जो लोग आज भी अंग्रेज़ीदाँ मानसिकता से गुज़र रहे हैं वे एक प्रकार से देश का दुर्भाग्य ही है। मानसिक रूप से पराधीनता के शिकंजे में वे पडे हुए हैं। लेकिन आजकल भाषा की दृष्टि से जो राष्ट्रीयता की लहरें उठी हैं वह काफी आशाप्रद है। लेखक के अनुसार हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक, सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेज़ी भाषा का प्रमुख है। इस प्रभुत्व को तोड़ने से हम पराधीनता का आधा बोझ कम कर सकते हैं।

मातृभाषा में ही हम स्वतंत्र अभिव्यक्ति आसानी से कर पायेंगे। परतंत्र भारत के लोगों ने इसलिए अंग्रेज़ी को अपनाया रखा है कि इससे उनकी रोटी जुडी हुई है। रोटियों के साथ कुछ अधिकार तथा सम्मान मिलना ऐसे लोग गर्व की बात मानते हैं। लेखक कहते हैं कि " अंग्रेज़ी भाषा हमारी पराधीनता की वही बेडी है, जिसने हमारे मन और बुद्धि को ऐसा जकड़ रखा है कि उनमें इच्छा भी नहीं रही। हमारा शिक्षित समाज इस बेडी को गले का हार समझने पर मज़बूर है"। लेखक आगे कहते हैं कि विदेशी भाषा सीखकर अपने गरीब भाइयों पर रोब जमाने के दिन जल्दी ही समाप्त होते जा रहे हैं। परिस्थिति के वश में पडकर हम अंग्रेज़ी भाषा के उपासक बन गये हैं। हम अंग्रेज़ों के अनुकरण में गर्व महसूस करते हैं। फिर भी दुर्गति इसमें है कि अंग्रेज़ी में हमारा स्तर भी बहुत नीचा है। जापान, चीन, ईरान जैसे देशों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी नहीं होने के बावजूद भी वे सरलता की हरेक बात में हमसे कोसों आगे हैं।

प्रेमचन्द के अनुसार अंग्रेज़ी भाषा का प्रभुत्व तोड़ना और कौमी भाषा को अपनाने से हम स्वराज्य का दर्शन कर पायेंगे। विदेशी भाषा की बुनियाद पर स्वाधीनता हम प्राप्त न कर पायेंगे। राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र भाषा ही है। नदी, पहाड़ और समुद्र से राष्ट्र नहीं बनते। भाषा ही वह बंधन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रहता है। अंग्रेज़ों के आने से हमारी राष्ट्रभावना लुप्त हो गयी है।

राष्ट्रनिर्माण केलिए राष्ट्रभाषा का प्रचार करना महान काम है। यह पर असल बिखरी हुई कौम को मिलाने का काम है। अपने बंधुत्व की सीमाओं को हम फैला रहे हैं और सर्वोपरि भारत की एकता और अखंडता का प्रयास कर रहे हैं। हमें महान लक्ष्य की पूर्ति केलिए बलिदान और आदर्श की राह अपनने की ज़रूरत है।

प्रेमचन्द के अनुसार राष्ट्रभाषा पर विवाद व्यर्थ है। क्योंकि हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी तीनों एक ही चीज़ है। तीनों का मिला हुआ रूप ही हम सदा इस्तेमाल करते हैं। हर भाषा में हज़ारों विदेशी शब्द मौजूद हैं। दूसरी भाषा के शब्दों को छोडने से भाषा की प्राणवत्ता नष्ट हो जाती है। प्रेमचन्द सुंदर शब्दों में इसे यों व्यक्त करते हैं - " भाषा - सुंदरी को कोठरी में बंद करके आप उसका सतीत्व तो बचा सकते हैं, लेकिन उसके जीवन का मूल्य देकर। उसकी आत्मा स्वयं इतनी बलवान बनाइए कि वह अपने सतीत्व और स्वास्थ्य दोनों ही की रक्षा कर सके"। भाषा हमें

आसानी से समझ में आनी चाहिए। एक चीज़ के दो नाम देकर आपस में लडना राष्ट्र की एकता में बाधा है, वह एक प्रकार की रोगी मनोवृत्ति है।

हिन्दु - उर्दू को लेकर हिन्दू - मुसलमानों की आपसी झगड़ा बेकार है। क्योंकि ऐसे अनेक मुसलमान कवि - शायर मिलेगे जिनका हिन्दी से जुड़कर विशेष ख्याति है। खडीबोली हिन्दी का साहित्यिक बीज बो देने में अमीर खुसरो की देन महत्वपूर्ण है। हिन्दी के हज़ारों शब्द और क्रियाएँ अरबी, फारसी से आयी हैं। यह सब जानकर भी आप हिन्दी को उर्दू से अलग समझते हैं, तो आप देश के साथ और अपने साथ बेइन्साफी करते हैं। हिन्ददेश की दृष्टि से देखें तो हिन्दी नाम कौमी भाषा के रूप में स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

भाषा का परम विकास अत्यंत आवश्यक है। साहित्य के अलावा अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ भाषा की उपयोगिता है। इसलिए अन्य राष्ट्रों की संपन्न भाषाओं की तरह हमें अपनी राष्ट्रभाषा को भी सर्वांगपूर्ण बनाना चाहिए।

प्रेमचन्द के अनुसार हिन्दी और उर्दू दोनों अपने अलग रूप में बिलकुल अधूरी हैं। इसलिए अन्य भाषाओं के शब्दों को अपनाना परम आवश्यक है। भाषा के विकास की प्रक्रिया धीरे - धीरे ही होगी। भाषा के विकास केलिए प्रांतीय भाषाओं के विशेषज्ञों को शामिल करते हुए एक अलग बार्ड बनाना चाहिए। हमारे अंग्रेज़ी में मस्त विद्वान लोग भी राष्ट्रीय दायित्व के साथ काम करता तो यह सब काम सरल हो जाएगा। प्रेमचन्द का पूछना है, "जिस देश का दिमाग विदेशी भाषा में सोचे और लिखे, उस देश को अगर संसार राष्ट्र नहीं समझता, तो क्या वह अन्याय करता है? जब तक आपके पास राष्ट्रभाषा नहीं, आपका राष्ट्र भी नहीं"। कठिन मेहनत से ही यह सपना साकार हो सकता है। हमारी पूरी ताकत यहीं खर्च करने की ज़रूरत है।

सिर्फ अंग्रेज़ी सीखने से शिष्टता नहीं आती। शिष्टता हमारी मीरास है। मगर खेद है कि वह आज दुर्बलता बन रही है। लेखक के मत में, हमारे जितने विद्यालय हैं, सभी गुलामी के कारखाने हैं, जो लड़कों को स्वार्थ का ज़रूरतों का, नुमाइश का, अकर्मण्यता का गुलाम बनकर छोड देते हैं। इस अंग्रेज़ी शिक्षा की बाज़ारी कीमत भी शून्य के बराबर है।

लेखक का कहना है कि भाषा के प्रचार के तरीकों में अच्छे नाटकों और सिनेमाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसीप्रकार हमारे नेता और विद्वान लोग अगर राष्ट्रभाषा का व्यवहार कर सकते तो जनता में उस भाषा की ओर विशेष आकर्षण अवश्य होगा।

साहित्य पर बोलते हुए प्रेमचन्द का कहना है कि प्रांतीय साहित्य को अपनाने से हिन्दी और संपन्न हो सकती है। सभी भारतीय भाषाओं से यह काम नहीं हो पा रहा है। प्राचीन साहित्य सारे का सारा काव्यमय है। उस ज़माने की परिस्थितियाँ रचनाकारों पर खूब हावी रहीं। इसिलिए वे प्रेम श्रृंगार, विलास आदि को छोड़ समाज की मुख्य धारा में साहित्य का पहुँचा नहीं पाये। हिन्दी की नवीन कविता से प्राचीन से पूर्ण रूप से नाता तोड़ लिया है। समय के प्रभाव ने उस पर भी अपना रंग जमाया है। हमारी हृदयगत भावनाओं को वह हृदयंगम करती जा रही है। सबके पास गहन अनुभूति नहीं होती है। इसलिए यथार्थ और कल्पना को अलग रूप से मानकर चलनेवाले लोग भी मौजूद हैं। हिन्दी के काव्य, कथा, नाटक साहित्य पर भी लेखक प्रकाश डालते हैं। उर्दू के महान उपन्यासकारों का भी वे स्मरण करते हैं। हिन्दी उपन्यास के प्रति वे आशावादी हैं।

राष्ट्रीय तौर पर एक लिपि भी महत्वपूर्ण विषय है। आवश्यकतानुसार प्रांतीय भाषाओं से लिपि का स्वीकार नागरी लिपि कर सकती है। हिन्दी लिपि सीखना आसान होने की वजह उसे राष्ट्र लिपि के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। अर्थात् प्रेमचन्द ने आज़ादी के बहुत पहले ही जिस लिपि की कल्पना की थी आज वह यथार्थ बन गया। वे उर्दू लिपि को मिटाना नहीं चाहते। सिर्फ यह चाहते कि अंतप्रांतीय व्यवहार नागरी लिपि में हो जाय। जनता में राष्ट्र - चेतना को इतनी सजीव कर उसे राष्ट्रहित केलिए छोटे - छोटे स्वार्थों का बलिदान करना सीखना चाहिए।

परतंत्र देश में हमें साहस और बुद्धि से काम करना होगा। भाषा और देश केलिए लडनेवाले लोग सिपाही ही है। सिपाही लडता है, हारने - जीतने की उसे परवाह नहीं होती। उसके जीवन का ध्येय ही यह है कि वह बहुतों केलिए अपने को होम कर दे। लोगों के बीच, आपस में श्रद्धा और विश्वास बढ़ने की ज़रूरत है। हमें दूसरों को प्रेरित करना चाहिए।

वस्तुतः प्रेमचन्द ने इस निबंध में राष्ट्र प्रेम का उदात्त निदर्शन हमारे सामने प्रस्तुत किया है। पराधीन सुप्त जनता में देश भक्ति का संचार कराने में यह समर्थ है। प्रेमचन्द ने बहुत साल पहले राष्ट्रभाषा और लिपि पर जो राय व्यक्ति की है, वह आज यथार्थ बन गया है। उनकी दूरगामी दृष्टि यहाँ विशेष सराहनीय है। भाषाई एवं भावात्मक एकता को सुदृढ कराने में ये विचार सक्षम हैं।

8 - कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार

प्रेमचन्दजी ने भाषा को राष्ट्र की बुनियाद माना है। 'कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार 'शीर्षक निबंध बंबई के ' राष्ट्र - भाषा सम्मेलन ' में 1934 को दिया गया प्रेमचन्द का भाषण है। इसमें उन्होंने समाज की बुनियाद के रूप में भाषा को मानते हुए राष्ट्र की आज़ादी, एकता तथा अखंडता केलिए एक राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता पर बल दिया है। उनके मत में हिन्दुस्तानी भाषा को कौमी भाषा या राष्ट्रभाषा का पद देना समीचीन है।

प्रेमचन्द के अनुसार मानव अन्य प्राणियों से इसलिए भिन्न है कि वह अपने मन के भावों एवं विचारों को साफ - साफ भाषा में अभिव्यक्त कर सकता है। भाषा से व्यक्ति के चरित्र का पता चलता है। क्योंकि भाषा का संबंध आत्मा से हैं। इसलिए भाषा हमारी आत्मा का बाहरी रूप है, जिसका हम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। भाषा के एक - एक अक्षर में हम अपनी आत्मा का प्रकाश देख सकते हैं। आत्मा के विकास के अनुरूप हमारी भाषा भी प्रौढ़ एवं पुष्ट होती जाती है।

हमारी भाषा बोलनेवाले पराये लोगों के प्रति हमें विशेष अपनापन, आत्मीयता व निकटता का भाव महसूस होता है। मेल - मिलाव के साधनों में सबसे मज़बूत और असरदार साधन भाषा है। भाषा के रिश्ते की ताकत पर लेखक यों कहते हैं - " राजनीतिक, व्यापारिक या धार्मिक नाते जल्द या देर में कमज़ोर पड़ सकते हैं और अक्सर टूट जाते हैं, लेकिन भाषा का रिश्ता समय की और दूसरी बिखेरनेवाली शक्तियों की परवा नहीं करता और एक तरह से अमर हो जाता है "।

कौमी भाषा की ओर हमारी उदासीनता पर विचार करते हुए लेखक बताते हैं कि सभ्यता के विकास के साथ स्थानीय भाषाएँ राष्ट्रीय भाषा में आकर मिल जाती हैं। और दोनों के बीच निकटता महसूस भी होगी। हिन्दी की स्थिति भी वैसी है। हर प्रांत के लोग इसे समझ सकते हैं। प्रेमचन्द की राय में हिन्दूस्तान में बोली जानेवाली भाषा को हम हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी आदि कहने के बजाय हिन्दुस्तानी कहना अधिक सार्थक है। उसे हिन्दुस्तान के हर आदमी बोल सके और समझ सके।

प्रांतीय भाषाओं को कोई ठेस पहुँचाये बिना एक कौमी भाषा का निर्माण परम आवश्यक है। एक स्वतंत्र राष्ट्र की जड़ों को मज़बूत करने केलिए कौमी भाषा की ओर हमें ध्यान देना होगा। हम इस पर उपेक्षा का भाव बरत रहे हैं। गाँधीजी के सिवा किसी भी नेता ने इस मुद्दे पर ज़ोर नहीं दिया। कौमी ज़मान ही वह बालू है जिसकी बुनियाद पर हमारी कौमियत का मीनार खडा किया जा सकता है। वास्तव में कौमी भाषा ही हमें एक सूत्र में बाँध सकती है। वह सबको मिलनेवाली ताकत है। उसके बगैर हम सब बिखर जायेंगे और प्रांतीयता ज़ोर पकड़कर राष्ट्र का गला घोंट देगी।

परतंत्र भारत की कार्यालयी भाषा अंग्रेज़ी है। भारत के शासन में अंग्रेज़ों की सहायता करने केलिए हमें अंग्रेज़ी सीखना ज़रूरी है। नौकरी से जुडकर अंग्रेज़ी सीखकर हम भाषा के गुलाम बन जाते हैं। अंग्रेज़ी सीखने में कोई गलती नहीं। लेकिन इस दौड में हमारी कौमी भाषा की उपेक्षा करना एक बडा अपराध - सा है।

कौमी भाषा का स्थान अंग्रेज़ी ले रही है। अंग्रेज़ी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का हमारे ऊपर जैसा आतंक है, उससे कहीं ज़्यादा अंग्रेज़ी भाषा का है। पुराने समय में आर्य - अनार्य का भेद रहा था, आज बह अंग्रेज़ीदाँ का भेद है। अंग्रेज़ीदाँ आर्य है। उसके हाथ में अख्तियार है, रोब है, सम्मान है। गैर - अंग्रेज़ीदाँ अनार्य है। उसका काम केवल आर्यों की सेवा है। यह आर्यवाद बडी तेज़ी से बड़ रहा है। साम्राज्यवादी जाति की भाषा उसके घमंड और दबदवे का असर भी डालती है।

हिन्दुस्तानी साहब अंग्रेज़ साहबों का अनुकरण करने में इज्जत समझते हैं। प्रेमचन्द के शब्दों में - "अंग्रेज़ियत ने उसे हिप्नोटाइज़ कर दिया है, उसमें बेहद उदारता आ गयी है, छुआछूत से सोलहों आना नफरत हो गयी है, वह अंग्रेज़ साहब की मेज़ का जूठन भी खा लेगा और उसे गुरु का प्रसाद समझ लेगा; लेकिन जनता उसकी उदारता में स्थान नहीं पा सकती, उसे तो वह काला आदमी समझता है"।

हिन्दुस्तान के अधिकांश लोग हिन्दुस्तानी समझते और बोलते हैं। फिर भी हमारी यह दुस्थिति है। इस पर लेखक कहते हैं कि अंग्रेज़ी के चुने हुए शब्दों और मुहावरों और मंजी हुई भाषा में अपनी निपुणता और कुशलता दिखाने का रोग इतना बढ़ा हुआ है कि हमारी कौमी सभाओं में सारी कार्रवाई अंग्रेज़ी में होती है, अंग्रेज़ी में भाषण दिये जाते हैं, प्रस्ताव पेश किये जाते हैं, सारी लिखा पढी अंग्रेज़ी में होती है - उस संस्था में भी, जो अपने को जनता की संस्था कहती है।

हिन्दुस्तानी भाषा में फिलमों का निकलना एक आशप्रद परिणाम है। अंग्रेज़ी न जानना भी कौमी भाषा के विकास में सहायक हो रहा है। अखबारों के माध्यम से भी हमारी भाषा का विकास कर सकते हैं। यहाँ के ही नेताओं के भाषण को अंग्रेज़ी से अनुवाद के माध्यम से साधारण लोगों को पढने की दुर्गति हमारी दुरवस्था का एक उदाहरण है। ज़बान की गुलामी को प्रेमचन्द असली गुलामी मानते हैं। थोड़े ही दिनों में अपनी मातृभाषा को भूलना और नयी विदेशी भाषा बोलना शर्म की बात अवश्य है।

प्रेमचन्द ने कौमी भाषा का रूप विश्लेषण करते हुए लिखा है कि हिन्दुस्तानी ही कौमी भाषा केलिए सबसे उपयुक्त भाषा है। इसे वे हिन्दी या उर्दू का अलग - अलग नाम नहीं देते हैं। क्योंकि इन दोनों भाषाओं का एक ही ज़बान है। उर्दू वह हिन्दुस्तानी जबान है जिसमें फारसी अरबी के शब्द ज़्यादा है, उसी प्रकार हिन्दी में संस्कृत के शब्द अधिक मिलते हैं। इन दोनों भाषाओं को लेकर बहस निराधार है। साधारण बातचीत की भाषा हिन्दुस्तानी ही रही है। उसमें थोडा सा परिवर्तन कर अन्य व्यवहार में भी इस्तेमाल कर सकते हैं। जनता का संबंध इस भाषा से अधिक होने की वजह सही दिल से वे इसी

स्वीकार करेंगे। लेखक उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी के वाक्यों का परिचय देकर यह साबित करना चाहते हैं कि इनमें जो फरक दिखाई देता है, वह सिर्फ एक दो शब्दों का ही है। 'समाज विरोधी' के स्थान पर 'समाज को नुक्सान पहुँचानेवाले','अभियोग' के स्थान पर 'जुर्म', 'गुप्तचर' की जगह 'मुखबिर', 'श्रेणी' की जगह 'दर्जा' रखने पर हिन्दी हिन्दुस्तानी बन जाती है।

कौमी भाषाई विवाद को कम करने केलिए हिन्दी - कोश में उर्दू के और उर्दू - कोश में हिन्दी के शब्द बढ़ाने की ज़रूरत है। आसानी से उपयोग करनेवाले फारसी और संस्कृत के शब्दों को हम अपना सकते हैं। ऐसी कौमी भाषा की आवश्यकता है कि जो अधिक लोग आसानी से समझे। इस प्रकार लोगों के बीच आत्मीय संबंध स्थापित हो सके।

हमें भाषाई अंधता से दूर रहना चाहिए। अन्य भाषाओं के शब्दों की मिलावट से ही भाषा बढ़ती है। साधारण हिन्दी बोलनेवाले लोग संस्कृत शब्दों से अधिक फारसी शब्दों का व्यवहार करते हैं। लिखित भाषा बोलचाल की भाषा से मिलती जुलती होनी चाहिए। विद्वानों की भाषा और बाज़ार की भाषा में अंतर हो सकता है। शिष्ट भाषा केलिए कुछ मर्यादा अवश्य चाहिए। मगर यह भाषा के प्रचार प्रसार में बाधा न बन जाय। लेखक को अपने मन के भाव प्रकट करने के साथ भाषा को बना - संवारकार भी रखना चाहिए। वह साधारण जनता केलिए नहीं रसिकों केलिए लिखता है।

राष्ट्रभाषा केवल रईसों और अमीरों की भाषा नहीं हो सकती। उसे किसानों और मज़दूरों की भाषा बनना पडेगा। राष्ट्रभाषा का सिर्फ सभाओं में बैठकर निर्माण नहीं कर सकते, वह तो बाज़ारों और गलियों में बनती है। हिन्दी में उर्दू शब्दों को बिना तकल्लुफ स्थान देते हैं। लेकिन उर्दू के लेखक संस्कृत के मामूली शब्दों का भी प्रयोग नहीं करते। इसी जगह वे अरबी और फारसी शब्दों को चुनते हैं। यह बडे खेद की बात है। प्रेमचन्द की राय में इस समस्या का हल कोई मौलवी या पंडित नहीं कर पायेंगे। हिन्दुस्तानी भाषा ही इसकेलिए एकमात्र समाधान है।

जब हम अंग्रेज़ी को कौमी भाषा बनाए बैठेंगे तो आज़ादी की धुन पर किसी को विश्वास नहीं रहेगा। हमें एकता और सद्भाव से काम करना होगा। विद्यालयों तथा कॉलेजों में कौमी भाषा पढने की सुविधा चाहिए। आपस में ऐसे मंच की ज़रूरत है कि हम कौमी भाषा में बात कर सके। इसकेलिए सभी प्रांतों के विद्वानों का सहयोग चाहिए।

कौमी भाषा में जब साहित्य का उदय होगा तब टैगोर, मुंशी, देशाई, जोशी सब हर आदमी केलिए प्रिय लेखक बन जायेंगे। प्रेमचन्द खेद के साथ कहते हैं कि महात्मा गांधी के सिवा किसी भी नेता ने कौमी भाषा की ज़रूरत नहीं समझी और न उसका समर्थन किया। हिन्दुस्तानी या कौमी भाषा के प्रचार केलिए अखिल भारतीय संस्था खोलने की ज़रूरत है।

लिपि पर विचार करते हुए लेखक व्यक्त करते हैं कि प्रांतीय भाषाओं केलिए प्रांतीय लिपियाँ ही ठीक है। लेकिन हिन्दुस्तानी केलिए हिन्दी लिपि रखने से सुविधा होगी। उर्दू लिपि हिन्दी से बिलकुल जुदा है। हिन्दीवालों को उर्दू और उर्दूवालों को हिन्दीलिपि की शिक्षा स्कूलों में देनी चाहिए। निबंध के अंत में प्रेमचन्द कहते हैं कि "हमें इस शर्त को मानकर चलना है कि हिन्दी और उर्दू दोनों ही राष्ट्र लिपि हैं और हमें अख्तियार है, हम चाहे जिस लिपि में उसका व्यवहार करें। हमारी सुविधा, हमारी मनोवृत्ति और हमारे संस्कार इसका फैसला करेंगे"।

संक्षेप में कहें तो प्रेमचन्द के कौमी भाषा विषयक विचार आज भी प्रासंगिक है। लगभग सत्तर साल पहले उन्होंने जो राय व्यक्त की है वह अत्यंत महत्व रखती हैं।

9 - सप्रसंग व्याख्या कीजिए

1. सच्चे साहित्यकार का यही लक्षण है कि उसके भावों में व्यापकता हो, उसने विश्व की आत्मा से ऐसी ' हारमनी ' प्राप्त कर ली हो कि उसके भाव प्रत्येक प्राणी को अपने ही भाव मालूम हों।

मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी के अमर कलाकार हैं। वे हिन्दुस्तान की नयी राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार रहे हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय समाज का, विशेषकर समाज के सर्वहारा वर्ग का सही चित्र प्रस्तुत है।

उन्होंने पहले पहल हिन्दी कथा साहित्य को ऐयारी तिलस्म की कुतूहमभरी गलियों से निकालकर, समान्य जन जीवन के यथार्थ राजमार्ग पर प्रतिष्ठित किया। वे अप्रिय सत्यों के चितेरे रहे हैं। सामान्य आदमी की विशिष्ट कथाओं को उन्होंने बताया। विराट मानव संस्कृति की धारा में भारतीय जन - संस्कृति की गंगा ने जो कुछ दिया, उसके प्रमाण प्रेमचन्द के लगभग एक दर्जन उपन्यास और उनकी सैकड़ों कहानियाँ हैं। ' कुछ विचार ' निबंध संग्रह में प्रेमचन्द के भाषा और साहित्य से संबंधित गहन विचार सम्मिलित है।

प्रस्तुत गद्यांश ' जीवन में साहित्य का स्थान ' नामक निबंध से लिया गया है। प्रेमचन्द के अनुसार सच्चे साहित्यकार में अपने भावों की व्यापकता होनी चाहिए। विश्व - आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता उसमें चाहिए। साहित्यकार की वाणी तथा उसके भाव प्रत्येक प्राणी को अपना लगना चाहिए। प्रेमचंद के अनुसार साहित्य एक प्रकार से जादू की लकडी है, जो पशुओं में, ईट - पत्थरों में, पेड - पौधों में भी विश्व की आत्मा का दर्शन कर देती है।

कहने का तात्पर्य यही है कि साहित्यकार को विशाल संवेदनात्मक धरातल आवश्यक है। आदिकाल से मनुष्य केलिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिसके सुख - दुख, हँसने - रोने का मर्म समझ सकते हैं, उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है। साधारणतः विद्यार्थी को विद्यार्थी से, कृषक को कृषक जीवन से विशेष रुचि होती। मगर साहित्य जगत में यह भेद मिटता है। वहाँ सिर्फ मनुष्य की चिंता है। मानवीय भाव देश - काल से परे भी एक जैसा ही होता है। इसलिए साहित्यकार का भाव विश्व के किसी भी आदमी को अपना मालूम होता है। साहित्यकार में हृदय विशालता होना ज़रूरी है। उसमें विश्व बंधुत्व एवं लोकमंगल की भावना चाहिए। प्रेमचन्द को मानवता में अटूट आस्था है। वे साहित्य को मस्तिष्क की नहीं, हृदय की वस्तु मानते हैं। उनके मत में साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवार खडी होती है। इसलिए मनुष्य से अलग कोई साहित्य नहीं। अतः साहित्यकार मानवीय आत्मा के पडोसी होते हैं।

सप्रसंग व्याख्या कीजिए (नमूने के प्रश्न)

1. साहित्य का उद्देश्य

a. साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सचाई प्रकट की गयी हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो .....।

b. श्रृंगरिक मनोभाव मानव - जीवन का एक अंग मात्र है, और जिस साहित्य का अधिकांश इसी से संबंध रखता हो, वह उस जाति और उस युग केलिए गर्व करने की वस्तु नहीं हो सकता और न उसकी सुरुचि का ही प्रमाण हो सकता है।

c. हमारे कवियों को साधारण जीवन का सामना करने ..... कि मानसिक और बोद्धिक जीवन रह ही न गया था।

d. जब साहित्य पर संसार की नश्वरता का रंग चढा हो, ... संघर्ष का बल बाकी नहीं रहा।

e. अब वह स्कुर्ति या प्रेरणा केलिए अदभुत आश्चर्यजनक घटनायें ..... जिनसे समाज या व्यक्ति प्रभावित होते हैं।

f. कवि या साहित्यकार में अनुभूति की .....
..... उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दरजे की होती है।

g. जो हममें सच्चा संक्ल्प और .....
..... वह साहित्य कहने का अधिकारी नहीं।

h. ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसमें सौन्दर्य .....
..... उतनी ही प्रभावमयी होती है।

i. अपनी सहज अनुभूति और सौन्दर्य प्रेम .....
..... मनुष्यता के कारण पहुँचने में असमर्थ होता है।

j. हमें इसका निश्चय हो जाना चाहिए .....
..... अपने पात्रों की जबान से वह खुद बोल रहा है।

k. प्रेम ही तो अध्यात्मिक भोजन है .....
..... भोजन के मिलने से पैदा होती है।

l. पर जब तक कलाकार खुद सौन्दर्य - प्रेम से छककर .....
..... वह हमें यह प्रकाश क्योंकर दे सकता है?

m. जब हामारी आत्मा प्रकृति के मुक्त वायु मंडल में .....
..... हवा और रोशनी से मर जाते हैं।

n. साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन .....
..... मन का संस्कार होता है।

o. उसके विचारों में कला मनोभावों के व्यक्तीकरण का नाम है, ...
.....कैसा ही असर क्यों न पड़े।

p. उन्नति से हमारा तात्पर्य उस स्थिति से है .....
..... और उन्हें दुर करने की कोशिश करें।

q. इस भावोत्तेजक कला का अब ज़माना नहीं रहा .....
.....जिसमें कर्म का संदेश हो।

r. आनंद स्वतः एक उपयोगिता, युक्त वस्तु है .....
..... हमें सुख भी होता है और दुख भी।

s. एक रईस अपने सुरभित सुरम्य उद्यान में .....
..... घृणित वस्तु समझता है।

t. हमें एक ऐसे नये संगठन को सर्वांगपूर्ण बनाना है .....
..... उसी आदर्श को अपने सामने रखना है।

u. अगर उसकी सौन्दर्य देखनेवाली दृष्टि में विस्तृति आ जाय .....
..... दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं।

v. वह देश - भक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सचाई है!

w. हम पहाड़ को चोटी तक न पहुँच सकेंगे .....
..... विजय न प्राप्त कर सकें।

x. हम तो समाज के झंडा लेकर चलनेवाले सिपाही हैं .....
..... वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नहीं हो सकता।

y. भारत की हर एक भाषा में इस विचार के बिज प्रकृति और परिस्थिति ने पहले ही बो रखे हैं .....
..... पुष्ट करना हमारा उद्देश्य है।

z. हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा .....
..... और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।

2. <u>कहानी - कला</u> -1

a. आख्यायिका में आप महफिल के सामने से चले जायेंगे .....
..... निगाह नहीं उठा सकते।

b. कहानी वह ध्रुपद की तान है .....
..... गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।

c. वह साहित्य को समाज का दर्पण मात्र नहीं .....
..... जिसका काम प्रकाश फैलाना है।

3. <u>कहानी - कला</u> - 2

a. साहित्य काल्पनिक वस्तु है .....
.....और इसलिए वह सत्य है।

b. मनुष्य ने जगत में जो कुछ सत्य और सुंदर .....
..... कहानी भी साहित्य का एक भाग है।

c. कला दीखती तो यथार्थ है .....
..... यथार्थ मालूम हो।

d. यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते .....
..... कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं।

e. बुरा आदमी भी बिलकुल बुरा नहीं होता .....
..... आख्यायिका - लेखक का काम है।

f. वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है .....
..... भावनाओं को स्पर्श कर सके।

4. <u>कहानी - कला</u> - 3

a. मनुष्य - जीवन की सबसे बडी लालसा .....
..... हर एक जबान पर हो।

b. मनुष्य को तो वही कला मोहित करती हैं .....
.....पडकर संस्कृत हो गयी हो।

c. जिस तरह मसालों के बाहुल्य से भोजन .....
..... दुरुपयोग से विकृत हो जाता है।

d. जो कुछ स्वाभाविक है .....
.....जनता के मर्म को स्पर्श करने की शक्ति नहीं रह जाती।

e. मनुष्य जिस समाज में रहता है .....
..... सम्मिलित हो सकता है, वही सत्य है।

f. शक्ति तो संघर्ष में है।.....
..... यही साहित्य की उपयोगिता भी है।

g. साहित्य में कहानी का स्थान इसलिए उँचा है .....
..... भाव को प्रकट कर देती है।

h. हम वहाँ भी अपनी ही आत्मा का प्रकाश .....
..... हमारा घनिष्ठ परिचय हो।

i. कितने ही सिद्धांत, जो एक ज़माने में सत्य .....
..... मनोभावों में कभी परिवर्तन नहीं होता।

j. गलपकार अपनी रचनाओं को जिस साँचे में .....
..... जो जीवन - सत्य कहलाता है।

5. <u>उपन्यास</u>

a. मैं उपन्यास को मानव - चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ .....
..... उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।

b. हमारा चरित्राध्ययन जितना ही सूक्ष्म .....
..... हम चरित्रों का चित्रण कर सकेंगे।

c. और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशवादी .....
..... बुराई नजर आने लगती है।

d. वह हमें ऐसे चरित्रों से .....
..... जो साधु प्रकृति के होते हैं।

e. इसलिए वही उपन्यास उच्चकोटि के .....
..... आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं।

f. उपन्यासकार की सबसे बडी विभूति .....
..... यह गुण नहीं है, वह दो कौडी का है।

g. निर्दोष चरित्र तो देवता हो जाएगा .....
..... हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड सकता।

h. उपन्यासकार को अपनी सामग्री, आले पर .....
..... जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते रहते हैं।

i. बस, एक बार का देखना उसके लिए .....
..... विशाल भवन निर्माण करती है।

j. कुशाल लेखक वही है .....
..... उसे लिखकर स्पष्ट कर देनी चाहिए।

6. <u>उपन्यास का विषय</u>

a. उपन्यास के विषय का विस्तार .....
..... उनके उत्कर्ष और अपकर्ष से है।

b. तंग सड़कों पर चलनेवालों केलिए .....
..... मार्गहीन मैदीन में चलनेवालों केलिए।

c. ऐसे लेखक को थोड़ी देर केलिए .....
..... जिनकी विशेषता उनकी गूढता नही, उनकी सरलता होती है।

d. हमें केवल हृदय के उन तारों पर चोट .....
..... हृदय पर भी वैसा ही प्रभाव हो।

e. कोई चरित्र अंत में भी वैसा ही रहे .....
..... वह असफल चरित्र है।

f. जिसने जिन्दगी के ऊँच - नीच देखे हैं .....
..... आनंद प्रदान करने की सामर्थ्य होगी।

7. <u>एक भाषण</u>

a. अंधविश्वास और धर्म के नाम पर .....
..... उसकी ज़हरीली दुर्गंध उड़ - उड़कर समाज को दूषित कर रही है।

b. अगर विद्या हममें सेवा और त्याग का भाव न लाये .....
..... उस विद्या से हमारी अविद्या अच्छी।

c. उनकी बारीक नज़र ने देख लिया .....
..... अपने भाषा - प्रेम को और भी सिद्ध कर दिया है।

d. भाषा के विकास में हमारी संस्कृति की .....
..... वहाँ भाषा में भेद होना स्वाभाविक है।

e. जो कुछ लिखा जाय उसका फायदा .....
..... एक दिल समझें, और कौम में ताकत आवे।

f. दोनों तरफ से इस अलगौझे का सबब .....
..... अपने भावों और विचारों को अदा करती है।

g. वह उस तालाब की तरह है .....
..... जो खुली हुई धारा में होती है?

h. कौम की जबान वह है .....
..... जिसमें कौम के जज़बात हों।

i. वह इतनी बुलंदी पर पहूँच गये हैं .....
..... कोशिश करने पर भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकते।

j. यह जनता का काम है कि वह साहित्य .....
..... ऊँचे - से - ऊँचे विचारों को प्रकट करना है।

k. धर्म नाम है उस रोशनी का .....
..... अनुभूति या यकीन करती है।

l. धुनिया में मानवजाति के कल्याण .....
..... आगे - आगे चलनेवाला 'एडवांस गार्ड' है।

m. साहित्य का स्रष्टा उन चोटों को .....
..... उसकी देह यथार्थ चित्रण हो।

n. सजीव साहित्य वह है, जो प्रेम से .....
..... जीवन है, आत्म - सम्मान है।

o. राष्ट्र प्राणियों को उस समूह को कहते हैं .....
..... एक भाषा हो और एक साहित्य हो।

p. साहित्य में हम हिन्दू नहीं है.....
..... वह मनुष्यता हमें और आपको साकर्षित करती है।

8. <u>जीवन में साहित्य का स्थान</u>

a. साहित्य का आधार जीवन है .....
लेकिन बुनियाद इस मिट्टी के नीचे दबी पडी है।

b. जीवन परमात्मा को अपने कामों का जवाबदेह .....
..... इधर - उधर नहीं हो सकता।

c. वास्तव में सच्चा आनंद सुंदर और सत्य से .....
..... साहित्य का उद्देश्य है।

d. सत्य से आत्मा का संबंध तीन प्रकार .....
..... तीसरा आनंद का।

e. श्रीरामचन्द्र शबरी के जूठे बेर .....
..... उनकी आत्मा विशाल है।

f. जिसकी आत्मा जितनी ही विशाल है .....
..... अपनी आत्मा का मेल कर सके हैं।

g. जिन प्रवृत्तियों में प्रकृति के साथ हमारा सामंजस्य .....
..... वे इर्षित हैं।

h. साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, ...
..... साहित्य बाजी ले जाता है।

i. वे स्वयं विशाल हृदय के मनुष्य थे .....
..... मानव - चरित्र की उपेक्षा कैसे करते?

j. साहित्य वह जादू की लकडी है .....
..... आत्मा का दर्शन करा देती है।

k. सच्चे साहित्यकार का यही लक्षण है .....
..... अपने ही भाव मालूम हों।

l. इतिहास जीवन के विभिन्न अंगों की प्रगति का नाम है .....
..... अपने देशकाल का प्रतिबिंब होता है।

m. मनुष्य स्वभाव से देवतुल्य है .....
..... अपना देवत्व खो बैठता है।

n. साहित्य सामाजिक आदर्शों का स्रष्टा है .....
..... बहुत दिन नहीं लगते।

o. सत्य है कि हम सब ऐसे चरित्रों का निर्माण .....
..... वैद्यों की आवश्यकता है और रहेगी।

p. साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है .....
..... सच्चे तपस्वी, सच्चे आत्मज्ञानी।

9. उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी

a. राष्ट्रीय भाषा के बिना किसी राष्ट्र .....
..... वह राष्ट्रीयता का दावा नहीं कर सकता।

b. और जिसप्रकार अंग्रेज़ों की भाषा अंग्रेज़ी .....
..... उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक भी है।

c. हम चाहे उर्दू लिखें और चाहे हिन्दी, ...
..... जनसाधारण को प्रिय नहीं होती।

d. हिन्दुस्तानी इस चारदीवारी को तोडकर .....
..... घर के आदमी की तरह

e. जो लोग भारतीय राष्ट्रीयता का स्वप्न .....
..... हिन्दी का राष्ट्रीय स्वरूप है।

f. जब हमारे जीवन की प्रत्येक बात और प्रत्येक अंग में परिवर्तन हो रहे हैं ..... दृष्टिकोणों पर अड़े रहें ?

10. <u>राष्ट्रभाषा हिन्दी और उसकी समस्यायें</u>

a. पैरों से ज़्यादा उसका असर कैदी के दिल पर .....
..... मिठाई भी नहीं खाने पाता।

b. आप कानूनी बाल की खाल निकालनेवाले वकील.....
..... भूले हुए भाइयों को गले मिला रहे हैं।

c. आदर्श का महत्त्व आप खूब समझते .....
..... कठिनाइयों में हमें साहस देता है।

d. भाषा सुंदरी के कोठरी में बंद करके .....
..... स्वास्थ्य दोनों ही की रक्षा कर सके।

e. एक चीज़ के दो नाम देकर ख्वावसखाह आपस
..... रोगी और दुर्बल मन की है।

f. अगर हमारी राष्ट्रभाषा सर्वांगपूर्ण नहीं है, ...
..... राष्ट्रों की संपन्न भाषायें हैं।

g. जिस देश का दिमाग विदेशी भाषा में सोचे .....
..... आपका राष्ट्र भी नहीं।

h. राजनीति के माहिर अंग्रोज़ शासकों को .....
..... व्यवहार करते हैं।

i. अंग्रोज़ी में आप अपने मस्तिष्क का गूदा निकालकर .....
..... जितनी बच्चों के रोने की करता है।

j. यही बुनियाद है, आपका ..... जो एक हवा के झोंके में उड जाएगा।

k. और हमारे जितने विद्यालय हैं .....
..... गुलाम बनाकर छोड़ देते हैं।

l. एक मूर्ख किसान के पास ..... शराबी, लोकर, गुंडा, अकखड़, हया से खाली।

m. यह जाहिर है कि अनुभूतियाँ ..... केवल कल्पना के आधार पर चलते हैं।

n. सिपाही लडता है, हारने - जीतने की .....
..... अपने को होम कर दे।

11. कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार

a. यों कह सकते हैं कि भाषा हमारी आत्मा .....
..... हमारी आत्मा का प्रकाश है।

b. राजनीतिक, व्यापारिक या धार्मिक नाते .....
..... एक तरह से अमर हो जाना है।

c. यह आर्यवाद बडी तेज़ी से बढ़ रहा है .....
..... हमारा काम तो चलता है।

d. अंग्रोज़ियत ने उसे हिप्नोटाइज़ कर दिया है .....
..... काला आदमी समझता है।

e. लेकिन अंग्रेज़ी के चुने हुए शब्दों और मुहावरें .....
..... अंग्रेज़ी में होती है।

f. यह ठीक है कि कुदरत अपना .....
..... अनुकूल जलवायु दे रहा है।

g. अपने समझदारी का जो तराजू .....
..... हमसे कहीं ज़्यादा समझदार है।

h. वाइसराय या गवर्नर अंग्रेज़ी में बोले .....
..... नज़र नहीं आ सकती।

i. बलिक यों कहता चाहिए कि वह लिखता हैं .....
..... उसे कुछ भी परवाह नहीं होती।

j. पंडितजी की खिलाखिलायेंगे ..... कलेजा मज़बूत करके सहन करना पड़ेगा।

k. हमें उर्दू के मौलवियों और ..... निरर्थक कैदों से आज़ाद हो।

l. लेकिन अगर आगे चलकर ..... तो किसी से कम नहीं।

Reg No.....
Name .....

(Pages :2)

M 4533

M.A. (FINAL) DEGREE EXAMINATION, APRIL 1999

Hindi

Paper IX - Optional (a) - SPECIAL AUTHOR - PREMCHAND

(1997 Admission)

Time: Three Hours

Maximum : 150 Marks

एक से आठ प्रश्नों में से किन्ही चार प्रश्नों के उत्तर लिखिए ।
प्रश्न नौ और दस अनिवार्य हैं ।

खण्ड अ

I हिन्दी उपन्यास - साहित्य के विकास में प्रेमचन्द का क्या योगदान रहा हैं ? चर्चा कीजिए ।

II ''गोदान'' की समस्याओं की चर्चा करते हुए सिद्ध कीजिए कि यह एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है ।

III ''आदर्शोन्मुख यथार्थनाद और प्रेमचन्द'' शीर्षक पर एक निबन्ध लिखिए ।

IV ''गोदान'' के होरी का चरित्र - चित्रण कीजिए ।

V ''साहित्य का उद्देश्य'' नामक निबन्ध के आधार पर प्रेमचन्द के साहित्य - सेबन्धी विचारों पर प्रकाश डालिए ।

VI हिन्दी कथा - साहित्य को शिल्प एवं कला की द्रष्टि से प्रेमचन्द की क्या देन हैं ? समझाइए ।

VII कहानी - कला की द्रष्टि से ''कफन'' की आलोचना किजिए ।

VIII ''दो बहाने'' की विशेषताएँ समझते हुए उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालिए ।

(4 x 25 = 100 marks)

खण्ड अ

IX किन्हीं चार पर टिप्पणियाँ लिखिए :

1 ''गोदान'' में ग्रामीण चेतना ।

2 ''गोदान'' की मिस मालती का व्यक्तित्व ।

3 ''गोदान'' का सामाजिक आदर्श ।

4 कहानी - कला के विषय में प्रेमचन्द के विचार ।